Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

महाभारत

43
M
53

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

167963
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत...

दुष्ट व्यक्ति साधारण कोटि का हो तो उसका बुरा परिणाम सीमित रहता है, परन्तु जब दुष्टता किसी सम्पन्न व्यक्ति अथवा राजपुरुष में आ जाती है तो उसका परिणाम होता है युद्ध। सभी युद्धों की यही कहानी है।

संसार का भीषणतम युद्ध था महाभारत जिसमें, कहते हैं, पचपन लाख से भी अधिक व्यक्ति मारे गये थे और वह भी केवल 18 दिन में। इस पर भी यह धर्म युद्ध था। क्यों और कैसे?

यह कथा सुनिये संजय की जुबानी। संजय जिनका राज्य-परिवार से निकट का सम्बन्ध था और जो युद्ध के प्रत्यक्षदर्शी थे।

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोरों के लिए ज्ञानवर्धक, रोचक, प्रकाशन

महर्षि दयानन्द	गुरुदत्त
श्री कृष्ण	गुरुदत्त
जगत की रचना	गुरुदत्त
महाभारत	गुरुदत्त
हिटलर की कहानी	गुरुदत्त
श्री राम	गुरुदत्त
धर्मवीर हकीकत राय	गुरुदत्त
वीर पूजा (चन्द्रशेखर आज़ाद के जीवन पर)	गुरुदत्त
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्ज़ी अन्तिम यात्रा	गुरुदत्त
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी जीवन यात्रा	शिवकुमार गोयल
स्वामी विवेकानन्द	शिवकुमार गोयल
अमर सेनानी सावरकर	शिवकुमार गोयल
क्रान्तिकारी आन्दोलन (सशस्त्र क्रांति का इतिहास)	शिवकुमार गोयल
धरती है बलिदान की	शान्ता कुमार
पांडवप्रिया पांचाली	सचदेव
क्रान्तिकारी भगत सिंह	सुरेश
झांसी की रानी	परमेश्वर प्रसाद सिंह
महाराणा प्रताप	परमेश्वर प्रसाद
बीर बन्दा बैरागी	नवीन जैन
क्रान्तिकारी आज़ाद	शंकर सुल्तानपुरी
क्रान्तिकारी सुभाष	शंकर सुल्तानपुरी
क्रान्तिकारी देशभक्त सिख	भरतराम भट्ट
क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल	डा० ईश्वर प्रसाद वर्मा
शक्तिपुत्र शिवाजी	सीताराम गोयल
हरि सिंह नलवा	अशोक कौशिक
बोध कथाएँ	अशोक कौशिक
धार्मिक कथाएँ	अशोक कौशिक
शिक्षाप्रद कथाएँ	अशोक कौशिक
पौराणिक कथाएँ	योगेन्द्र दत्त
देवयानी तथा अन्य कथाएँ	योगेन्द्र दत्त
सदाचार की कथाएँ	योगेन्द्र दत्त
मानवता की कथाएँ	योगेन्द्र दत्त
अनमोल कहानियाँ	पूनम त्यागी
देवता स्वरूप भाई परमानन्द	श्री हरिबंश
आदर्श जासूस	वरदा चारी पंडित
जीवन संघर्ष (दो क्रान्तिकारियों की गौरव गाथा)	गुणमाला सोमानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत

081
167963

गुरुदत्त

Central Library
167963
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-110005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© प्रकाशकाधीन

R
089.9143
GUR-M

प्रकाशक	:	हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली-110005
वितरक	:	हिन्दी साहित्य सदन 2, बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड करोल बाग, नई दिल्ली-110005 23553624, 23551344, 09213527666
संस्करण	:	2021 पाँचवा
शब्द संयोजन	:	शिक्षा नेटवर्क, खेकड़ा।
मूल्य	:	80.00
मुद्रक	:	संजीव ऑफसेट प्रिन्टर्स कृष्ण नगर, दिल्ली-51

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत

:1:

मैं महर्षि गवल्गण का पुत्र संजय हूँ।

इस समय मेरी आयु एक सौ पन्द्रह वर्ष की है। अब मुझे अपने इस शरीर का अन्त समीप दिखाई दे रहा है। इस कारण मैं अपने जीवन के कुछ अनुभव लिख जाना चाहता हूँ जिससे जो इन अनुभवों को पढ़ें और चाहें तो इनसे लाभ उठा सकें।

महाराज युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डव, द्रौपदी सहित स्वर्ग सिधार चुके हैं। इस समय अर्जुन के पौत्र महाराजा परीक्षित सिंहासन पर विराजमान हैं। देश में शान्ति है और धर्म-राज्य स्थापित है। यद्यपि कलियुग का आरम्भ हो चुका है और जैसा कि कहा जाता है कि कलियुग में अधर्म बढ़ जाता है, लोग अपने-पराये का विचार नहीं करते, स्वार्थी बन जाते हैं, इस पर भी अभी कलियुग का विशेष प्रभाव आरम्भ नहीं हुआ। इसका कारण है कौरव-पाण्डव युद्ध।

लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व देश में एक भयंकर युद्ध हुआ था। इस युद्ध में पचपन लाख से भी अधिक सैनिक मारे गये थे और सब लगभग अठारह दिन के युद्ध में। जबसे सृष्टि बनी है, ऐसा भयंकर युद्ध नहीं हुआ होगा और कदाचित् सहस्रों वर्ष तक इस युद्ध को लोग भूलेंगे नहीं। लोग इस युद्ध से शिक्षा ग्रहण करेंगे और युद्ध को रोकने का प्रयास करते रहेंगे।

इस युद्ध का पूर्ण विवरण महर्षि व्यास अपने ग्रन्थ 'जय' में लिख गये हैं। मैंने वह विवरण सुना है, परन्तु वह 'जय' ग्रन्थ इतना बड़ा है कि साधारण लोग उसे पढ़ नहीं सकेंगे। साथ ही कई स्थानों पर विवरण भ्रमपूर्ण है और लोग उसे समझ नहीं सकेंगे। विद्वान लोग उसे पढ़ेंगे तथा साधारण प्रजा को उसमें तथ्य निकालकर समझाया करेंगे।

मेरा, महाराज धृतराष्ट्र तथा राज्य परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। युद्ध का मैं आंखों देखा साक्षी हूं। इस कारण मुझे बहुस-सी ऐसी बातें विदित हैं जो शायद महर्षि व्यास जानते तो होंगे, परन्तु उन बातों के पीछे जो पृष्ठभूमि थी, उसे वह समझ नहीं सके। इसी कारण मैं उन बातों को लिख देना चाहता हूं।

एक बात निश्चित है कि यह युद्ध धर्म-युद्ध था। इसमें धर्म की विजय हुई थी और अधर्म का नाश हुआ था। यद्यपि इसका भारी मूल्य देश तथा समाज को चुकाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ा। परन्तु इसमें दोष जहां दुष्ट लोगों का है, वहां उन साधु जनों का भी है जो दुष्टों को सहन करते रहे। अवसर आने पर दुष्टों को उन्होंने दण्ड नहीं दिया। बाद में दुष्टों का बल इतना बढ़ गया कि इस भयंकर युद्ध द्वारा ही उनका नाश किया जा सका।

:2:

लगभग नब्बे वर्ष पूर्व की बात मुझे स्मरण आ रही है। मैं शिक्षा समाप्त कर चुका था और अपने पिताजी के पास बैठा था। मैं भविष्य के बारे में कि मैं क्या करूँ, उनसे सम्मति कर रहा था। इस समय पिता जी ने कुछ क्षण के लिए आंखें मूंदी, विचार किया और फिर कहने लगे, "संजय! तुम्हारे सामने दो पथ हैं। मेरे आश्रम में रहो और स्वाध्याय करो तथा जो तुम्हारे पास आयें, उनको शिक्षा दो।

"दूसरा पथ है कि तुम देश-विदेश घूमकर समाज में धर्म का प्रचार करो। अब से कुछ वर्ष उपरान्त देश में भारी हलचल होने वाली है। अधर्म का प्रचार बढ़ रहा है और धर्म का पक्ष दुर्बल पड़ रहा है। यह तुम जैसे युवा पुरुषों का कर्त्तव्य है कि तुम आगे आओ और देश का जो धर्म-पक्ष है, उसे सबल बनाओ। बताओ, कौन-सा पथ स्वीकार करोगे?"

मेरे भीतर का युवा रक्त बोल उठा, "पिताजी, मैं धर्म-पक्ष को सबल बनाने में अपना जीवन लगाना चाहता हूं। परन्तु जो आपने कहा है कि अधर्म का प्रचार बढ़ रहा है, वह मुझे स्पष्ट नहीं हुआ।

"देखो संजय! इस समय हस्तिनापुर राज्य एक शक्तिशाली राज्य है। इस पर भी राज्य का उत्तराधिकारी कोई नहीं। उत्तराधिकारी को प्राप्त करने के लिए वहां अधर्म का पथ स्वीकार किया जाने वाला है।

"हस्तिनापुर के राजा चन्द्रवंशी हैं। इनके पूर्वज मध्य एशिया से भारत में आये थे। चन्द्रवंशी भोगवादी हैं। इनका लक्ष्य है भोग। ये अपनी इच्छा को धर्म मानते हैं और जो उनको अच्छा लगता है, युक्ति से, बल से अथवा जैसे भी सम्भव हो, उसको प्राप्त करना चाहते हैं। मैं तुम्हें इनका इतिहास संक्षेप में सुनाता हूं।

"इनका एक राजा नहुष था कामभोज में राज्य करता था। लूट-मार मचाता हुआ वह देवलोक तक जा पहुंचा। इसने देवलोक पर विजय प्राप्त की और राजा इन्द्र को बन्दी बना लिया। देवलोक की युवा तथा सुन्दर स्त्रियों को बन्दी बना लिया तथा उनका भोग करने लगा। इसके सैनिक भी दुष्ट थे।

"नहुष ने विचार किया कि इन्द्र की पत्नी शची को वह अपनी रानी बनाएगा। इन्द्राणी शची अतीव सुन्दरी थी। नहुष ने विचार किया कि वह इन्द्र के सिंहासन पर है। इस कारण इन्द्राणी को उसकी पत्नी बनना चाहिये। इस कारण वह उससे विवाह करने चल पड़ा। परन्तु तब देवलोक के विद्वानों ने षड्यन्त्र रचकर उसको मार डाला और देवलोक को स्वतन्त्र किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसी नहुष के वंश में एक राजा ययाति हुए हैं। इन्होंने भी दासियों से सम्बन्ध बनाना आरम्भ किया। बूढ़े होने पर भी भोग-विलास में लगे रहे।

"एक राजा दुष्यन्त था। बड़ा पराक्रमी और बलशाली। एक बार शिकार खेलने जंगल को गया हुआ था कि जंगल में महर्षि कण्व के आश्रम में जा पहुंचा। महर्षि के आश्रम में उनकी पालित कन्या शकुन्तला थी। राजा ने उसे देखा तो उस पर मोहित हो गये और उसे फुसलाने लगे कि उनसे विवाह कर ले।

"शकुन्तला ने कहा कि महर्षि कुछ दिन के लिए आश्रम से बाहर गये हैं। उनके आने पर राजा को चाहिए कि महर्षि से कहे कि मुझसे विवाह करना चाहते हैं। परन्तु दुष्यन्त को चैन कहां था? उसने शकुन्तला को लालच दिया कि वह उसे महारानी बनायेगा, उसके पुत्र को राजा बनायेगा और पता नहीं क्या-क्या बातें कही। बेचारी शकुन्तला राजा के मोह-जाल में फंस गई। राजन ने महर्षि के आने से पहले ही उससे गंधर्व विवाह किया और फिर शकुन्तला को आश्वासन दे कि वह अपने राज्य में पहुंचकर अपनी सेना लेकर आयेगा और सम्मानपूर्वक उसे लेकर जायेगा, स्वयं वहां से भाग गया।

"अपने राज्य में पहुंचकर वह शकुन्तला को ही भूल गया।

"शकुन्तला के पुत्र उत्पन्न हुआ तो दुष्यन्त ने शकुन्तला को पहचानने से ही इन्कार कर दिया। उसे बुरा-भला भी कहा कि वह दुष्ट है, झूठ बोलती है और यह पुत्र उसका नहीं, किसी अन्य का है। बाद में महर्षि के शाप के भय से तथा देवताओं की धमकियों से डरकर राजा ने शकुन्तला को स्वीकार कर लिया।

"इसी वंश में एक राजा शान्तनु हुए हैं। यह राजा भी भोगी और विलासी था। बुढ़ापे में इसने एक केवट की लड़की सत्यवती से विवाह किया। सत्यवती एक वेश्या की लड़की थी। इस कारण जब शान्तनु ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया तो उसने अपने विवाह का मूल्य मांग लिया। केवट ने कह दिया कि राजा वचन दे कि सत्यवती की सन्तान राज्य की उत्तराधिकारी होगी। लड़की के मोह में पड़कर राजा ने अपने युवा पुत्र देवव्रत को राज्य से वंचित कर दिया। देवव्रत ने अपने पिता की इच्छा के अनुरूप यह प्रतिज्ञा ले ली कि वह राज्य नहीं लेगा। उसकी सन्तान राज्य पर अधिकार न कर ले, इसलिये वह विवाह ही नहीं करेगा और आजन्म ब्रह्मचारी बना रहेगा। इस भीष्म प्रतिज्ञा के कारण देवव्रत का नाम भीष्म पड़ गया।

"देवव्रत की भावना जो थी, ठीक थी परन्तु उस बूढ़े राजा ने अपने भोग-विलास के लिए राज्य का तथा देश का सत्यानाश करके रख दिया है।

"शान्तनु की इस नई पत्नी सत्यवती से दो सन्तान हुईं। चित्रांगद और विचित्रवीर्य। शान्तनु भोग-विलास में रत रहने के कारण स्वयं मर चुका है। बुढ़ापे की सन्तान चित्रांगद और विचित्रवीर्य दोनों प्रायः रुग्न रहते थे। चित्रांगद एक युद्ध में मारा गया तो विचित्रवीर्य राजा बना। वह भी बीमार रहता था। इस पर उसकी माता सत्यवती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चिन्ता लग गई कि कहीं वह भी शीघ्र न मर जाये, तब राज्य का क्या बनेगा? अतः क्यों न विचित्रवीर्य का विवाह कर दिया जाये जिससे उसके सन्तान हो जाये और राज्य को उत्तराधिकारी मिल जाये।

"इसके लिए उसने भीष्म से कहा। परन्तु समस्या यह थी कि विचित्रवीर्य की आयु अभी विवाह योग्य नहीं थी और फिर कोई भी राजा विचित्रवीर्य जैसे रुग्ण बालक को अपनी कन्या विवाह में देना नहीं चाहता था।

"इस पर भीष्म ने निश्चय किया कि काशिराज की कन्याओं से विचित्रवीर्य का विवाह कर दिया जाये। परन्तु भीष्म जानता था कि काशिराज तैयार नहीं होगा। साथ ही काशिराज ने घोषणा कर दी थी कि उसकी कन्याएं स्वयंवर करेंगी और जिससे वे चाहेंगी विवाह कर सकेंगी।

"भीष्म ने, जब काशी में स्वयंवर हो रहा था, काशी पर आक्रमण कर दिया और स्वयंवर की सभा में से काशिराज की तीनों कन्याओं को उठाकर ले भागा। काशिराज की सेना ने रोकने का यत्न किया परन्तु भीष्म जैसे ब्रह्मचारी और ओजपूर्ण व्यक्ति का विरोध नहीं कर सकी।

"तीनों कन्याओं को लेकर भीष्म हस्तिनापुर पहुंचा तो बड़ी कन्या अम्बा ने कह दिया कि वह अपने मन में शाल्वराज को वर चुकी है और इस कारण वह उसके अतिरिक्त किसी अन्य से विवाह नहीं करेगी।

"भीष्म ने अम्बा को छोड़ दिया। परन्तु शाल्वराज ने अम्बा को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसका कहना था कि भीष्म ने उसका अपहरण किया है, इस कारण अब भीष्म ही उससे विवाह कर सकता है। अम्बा पुनः भीष्म के पास आई और बोली कि आप मुझसे विवाह कर लिजिये। भीष्म ने कह दिया कि मैंने विवाह न करने की प्रतिज्ञा ले रखी है, चली जाओ। इस पर अम्बा ने आत्म-हत्या कर ली।

"छोटी दोनों बहिनों अम्बिका और अम्बालिका का विवाह विचित्रवीर्य से कर दिया गया।

"विचित्रवीर्य रुग्ण तो रहता ही था और फिर दो पत्नियां होने के कारण भोग-विलास में डूब गया। अब हमें सूचना मिली है कि वह भी निःसन्तान मर गया है।

"देखो संजय! यह स्थिति है इस राज्य की। भीष्म राज्य करना नहीं चाहता, क्योंकि वह प्रतिज्ञा ले चुका है और फिर सत्यवती उसे राज्य नहीं करने देगी, क्योंकि वह महास्वार्थी है। उसकी अपनी सन्तान जीवित नहीं। यदि ऐसा ही चलता रहा तो सम्भव है कि प्रजा में से कोई राजा बन जाये और यदि वह राजा कोई योग्य धर्म-परायण हुआ तो राज्य बच सकता है। परन्तु सत्यवती ऐसा होने नहीं देगी। भीष्म यदि विवाह कर ले तो उसकी सन्तान राज्य पा जाएगी और तब भी राज्य बच जायेगा, परन्तु सत्यवती ऐसा भी करने नहीं देगी। राज्य की नैय्या भँवर में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं चाहता हूं कि तुम हस्तिनापुर को अपना कर्मक्षेत्र बनाओ और राज्य तथा देश को बचाने का प्रयत्न करो। वहां धर्म-प्रचार की आवश्यकता है।"

अतः पिता की सम्मति से मैं हस्तिनापुर को चल पड़ा।

:3:

हस्तिनापुर पहुंचकर मैं एक पंथागार में ठहर गया। इस पंथागार में देश-विदेश के यात्री ठहरे हुए थे। स्नानादि से निवृत्त होकर मैं भोजनालय में गया तो भोजन करते हुए मेरे समीप बैठे एक विशालकाय व्यक्ति ने मुझसे पूछ लिया, "श्रीमान् कहां से पधारे हैं?"

मैंने कहा, "गन्धमादन पर्वत पर मेरे पिता का आश्रम है।"

"तो यहां किस कार्य से पधारे हैं?"

"राज्य में किसी सेवा-कार्य पर नियुक्ति की आशा से।"

"परन्तु अब तो हस्तिनापुर राज्य की नौका डूब रही है। यहां कोई राजा ही नहीं, आप सेवा किसकी करेंगे?"

"मैं समझता हूं कि राजकुमार देवव्रत जब तक जीवित हैं, नौका डूब नहीं सकती।"

"परन्तु वह तो वचनबद्ध है। वह विवाह नहीं करेगा और उत्तराधिकारी के अभाव में राज्य विनाश को प्राप्त हो जायेगा।"

वह विशालकाय व्यक्ति कहने लगा, "यह राज्य पाताल को चला जाएगा पर यहां गणराज्य नहीं बन सकता। यहां चन्द्रवंशियों का राज्य है। चन्द्रवंशी विचारधारा भोगवादी तथा स्वार्थमय है। ये नष्ट हो जाएंगे परन्तु राज्य नहीं छोड़ेंगे।"

"परन्तु राजकुमार देवव्रत तो स्वार्थी नहीं हैं और न ही वह भोगवादी हैं।"

वह व्यक्ति हँस पड़ा। हँसकर बोला, "जब उन्होंने विवाह नहीं करना तथा राज्य नहीं करना तो फिर राज्यप्रासाद में क्या कर रहे हैं? जंगल में जाकर ईश्वर का भजन करें।"

मैं चुप कर रहा। वास्तव में राजनीति पर मैं एक अपरिचित से बात करना नहीं चाहता था विशेषतया जबकि मुझे पूर्ण ज्ञान भी नहीं था।

भोजनोपरान्त मैं राज्य-प्रासाद के द्वार पर जा पहुंचा तथा द्वारपाल को अपना परिचय देकर बोला, "मैं राजकुमार देवव्रत से मिलना चाहता हूं।"

द्वारपाल ने कह दिया, "राजकुमार आजकल किसी से मिलते नहीं।"

मैंने कहा, "भाई, तुम मेरा नाम तथा परिचय राजकुमार की सेवा में भेज दो। अभी मैं दक्षिण पथ के पंथागार में ठहरा हुआ हूं। यदि वे मिलना चाहेंगे तो बुला लेंगे।"

अपना परिचय लिखाकर मैं नगर-भ्रमण के लिये निकल पड़ा। हस्तिनापुर नगर अति सुन्दर तथा विशाल था। विशाल मार्ग तथा उच्च अट्टालिकाएं थी। नगर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुकानें माल से लदी-फदी थी जिससे विदित होता था कि नगर समृद्ध है।

घूम-फिरकर मैं पंथागार में वापिस लौटा तो पता चला कि राज्य का एक प्रतिहार मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। मैं अपने आगार का द्वार खोलने लगा तो वह मेरे पास आ पहुंचा और पूछने लगा, "आप महर्षि गवल्गण के सुपुत्र श्री संजय हैं?"

"हां।"

"चलिये, आपको श्रीमान् राजकुमार देवव्रत जी ने बुलाया है।"

"अभी।"

"जी हां।"

आगार का द्वार मैंने खोला नहीं और मैं उस प्रतिहार के साथ राज्य-प्रासाद को चल पड़ा। मुझे राजकुमार के सम्मुख उपस्थित किया गया।

राजकुमार का आगार एक ब्रह्मचारी के निवास-स्थान जैसा ही था। आगार में एक चटाई बिछी थी। उस चटाई पर कुशासन लगा था और उस पर एक ओजस्वी बलशाली युवापुरुष विराजमान था। मैं समझ गया कि यही राजकुमार देवव्रत है।

मैंने आशीर्वाद दिया और आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। उस भव्य व्यक्ति ने मुझे सिर से पांव तक देखा और सामने एक अन्य बिछी चटाई पर बैठने का संकेत किया। जब मैं बैठ गया तो राजकुमार ने पूछा, "आप संजय हैं, महर्षि गवल्गण के सुपुत्र?"

"जी"

"यहां राज्य-परिवार की विपत्ति की बात सुनी है?"

"जी हां।"

"यदि हम आपकी सेवाएं लेना चाहें तो आप क्या कार्य करेंगे?"

"मैं अर्थशास्त्री हूं और राज्य का संचालन कर सकता हूं।"

"राज्य तो हमारे सैनिक चलाते हैं। हमारा साम्राज्य गांधार से कामरूप तक फैला हुआ है। लोग स्वेच्छा से कर देते हैं। यह इन सैनिकों के भय से है। इस कार्य के लिए हमें एक ब्राह्मण की आवश्यकता नहीं।"

"क्षमा करें श्रीमान्! सेना या तो समर के लिये होती है या किसी आपत्तिकाल के लिए। राज्य का मुख्य कार्य है कोटि-कोटि प्रजा को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की उपलब्धि कराना।"

राजकुमार हँस पड़ा। हँसकर बोला, "धर्म राज्य-नियम है जिसका निश्चय समय-समय की परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार होता रहता है और प्रजा उसका पालन करती है। अर्थ हमारे वैश्य वर्ण के लोग प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराते हैं। काम के लिए राज्य भर में मदिरालय हैं, नाचघर हैं, जहां लोग भोग करते हैं। मोक्ष में राज्य हस्तक्षेप नहीं करना चाहता।"

एक ऐसा व्यक्ति जिसके लिए मेरे मन में तथा देश के कोटि-कोटि जन में भारी मान था, उसके यह विचार सुन मैं गम्भीर विचार में पड़ गया। मुझे विचार-मग्न देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार ने कहा, "संजय जी, इस पर भी हम विपत्तिग्रस्त हैं। आप हमें सम्मति दीजिए कि इस समय हम क्या करें?"

"महाराज, राज्य की समस्या है कि उत्तराधिकारी कौन हो। माता सत्यवती की सन्तान शेष नहीं। अतः अब आप पर प्रतिज्ञा का प्रतिबन्ध नहीं रहना चाहिये। आप राज्य सम्भालिये तथा विवाह कर सन्तान उत्पन्न कीजिये।"

"नहीं संजय जी! अब यह नहीं हो सकता। मैं विवाह नहीं करूंगा। साथ ही अब इस राज्य पर माता सत्यवती का अधिकार है।"

"तब तो महाराज, यहां गणराज्य स्थापित कर देना चाहिये जिससे प्रजा में से कोई योग्य व्यक्ति आगे आकर राज्य सम्भाले।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता।"

इस पर मैं चुप कर गया। मैं कहना चाहता था कि तब तो राज्य नाश को ही प्राप्त होगा, परन्तु मैं कह नहीं सका। मुझे चुप देख राजकुमार ने कहा, "अच्छा, अब आप विश्राम कीजिये। आप राज्यसेवा में ले लिए गये हैं। समय पर उचित आदेश आपको मिलेगा।"

मैं प्रणाम कर उठ खड़ा हुआ और वापिस लौटने के लिए मुड़ा ही था कि राजकुमार ने ताली बजाई। प्रतिहार के आने पर उन्होंने आदेश दिया, "देखो, यह संजय जी राज्य के प्रमुख अधिकारी नियुक्त किये गये हैं। इनके लिए प्रासाद के उत्तरी कक्ष में आवास का प्रबन्ध कर दिया जाये।"

प्रतिहार मुझे आवास-गृहों के अधिकारी के पास ले गया और मुझे तुरन्त एक सुसज्जित आवास-गृह, चार आगारों वाला, रहने को मिल गया।

:4:

अगले दिन प्रातः मुझे प्रतिहार बुलाने आया और मुझे राजमाता सत्यवती के आगारों में ले गया। राजमाता के निजी आगार में जब मैं पहुंचा तो वहां राजकुमार पहले से ही विराजमान थे। वह खड़े थे और राजमाता एक उच्च आसन पर बैठी थी। मैंने प्रणाम किया तो सत्यवती ने प्रणाम का उत्तर न देकर सीधा मुझसे पूछ लिया, "देवव्रत ने कहा है कि हमारी वर्तमान कठिनाई में से निकलने का आप कोई उचित सुझाव दे सकते हैं।"

इस प्रकार वार्ता आरम्भ करने को मैं पसन्द नहीं करता था। इस पर भी मैंने कहा, "राजमाता! मैं राज्य-सेवा के लिए यहां आया हूं। राजकुमार ने मुझे राज्य-सेवा में ले लिया है। कल बातों-बातों में मुझे राज्य की कठिनाई बताई गयी थी। मेरा सुझाव यह है कि साम्राज्य को गणराज्य में परिवर्तित कर दिया जाए। समय पाकर प्रजा में से कोई योग्य व्यक्ति सामने आ जायेगा जो अपनी परम्परा चलायेगा। राजकुमार का कहना है कि इस विषय में आप ही उचित आदेश कर सकती हैं। क्योंकि आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक अधिकारी हैं।"

"तो राजकुमार भी इसे उचित समझते हैं?" सत्यवती ने आवेश में पूछा।

मुझे अनुभव हुआ कि राजमाता इस बात के सख्त विरोध में हैं और कदाचित् वे राजकुमार से रुष्ट न हो जाएं। अतः मैंने कहा, "नहीं राजमाता! राजकुमार का नहीं प्रत्युत यह मेरा सुझाव है।"

"मैं चाहता हूं कि कोई ऐसा उपाय किया जाये जिससे चन्द्रवंश की वृद्धि हो।" राजकुमार ने कह दिया।

"मैं भी यही चाहती हूं। संजय जी, आप बताइये, यदि महारानी अम्बिका अथवा अम्बालिका का पुनर्विवाह कर दिया जाये और उससे जो सन्तान उत्पन्न हो, उसे राज्याधिकारी बना दिया जाये तो कैसा रहे?"

"राजमाता, स्त्रियों के पुनर्विवाह की प्रथा नहीं है और साथ ही महारानी की नये विवाह से उत्पन्न सन्तान द्वारा किस प्रकार चन्द्रवंश की वृद्धि होगी।"

मैं समझ रहा था कि कदाचित् महारानी का विवाह राजकुमार देवव्रत से राजमाता करना चाहती हैं। पर क्या राजकुमार इसे स्वीकार करेंगे?

राजमाता ने कहा, "चन्द्रवंश की वृद्धि हो सकती है। यदि कोई चन्द्रवंशी-कुमार मिल जाये।"

मैं प्रसन्न था क्योंकि मेरी जानकारी में चन्द्रवंशी-कुमार राजकुमार देवव्रत ही था। मुझे अपने पिता का कथन स्मरण हो आया कि राज्य बच सकता है यदि देवव्रत विवाह कर सन्तान उत्पन्न करें। पर यह मेरी भूल थी। सत्यवती ने कहा, "संजय जी! मैं आपको अपने बाल्यपन की एक घटना सुनाती हूं। मैं एक अप्सरा आंद्रिका की सन्तान हूं। मेरा पालन-पोषण निषादराज दशरथ ने किया। बाल्यकाल से मैं मछेरों में रहती थी।

"एक दिन मैं गंगा में अपनी नौका में बैठी थी कि महर्षि पाराशर गंगा पार जाने के लिए आये। वह मेरी नौका में बैठ गये। मार्ग में मेरे रूप के कारण वह मुझसे प्रेम प्रकट करने लगे। मैंने स्वीकृति दी तो हमारा सम्बंध बन गया। मेरे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। महर्षि पाराशर उस लड़के को लेकर चले गये। उन्होंने उसे पढ़ा-लिखाकर विद्वान् बनाया और वह मेरा पुत्र महर्षि व्यास कृष्ण द्वैपायन के नाम से विख्यात है।

"मैं चाहती हूं कि दोनों रानियों का विवाह-कृष्ण द्वैपायन से कर दिया जाये और उनसे जो सन्तान उत्पन्न हो वह इस राज्य की उत्तराधिकारी हो।

"हम आपसे यह कार्य चाहते हैं कि आप कृष्ण द्वैपायन के पास जाएं और उससे यहां राज्य की स्थिति स्पष्ट कर मेरी ओर से यह आदेश दें कि वह इस विवाह को स्वीकार करने के लिए यहां हस्तिनापुर में आ जाएं। मुझे विश्वास है कि आपके समझाने पर तथा मेरी इच्छा जानकर वह न नहीं करेंगे।"

मैं चुप कर रहा। इस पर सत्यवती ने पूछा, "आप इस कार्य को कैसा समझते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है, यदि दोनों पक्ष मान जाएं।"

"तो क्या आप समझते हैं कि कृष्ण द्वैपायन नहीं मानेंगे?"

मैं कृष्ण द्वैपायन के विषय में जानता था वह कृष्ण वर्ण तो थे ही, साथ ही अत्यन्त कुरूप तथा विकृत रूप राशि रखते थे। मुझे चिन्ता थी तो इस बात की कि दोनों रानियां उन्हें स्वीकार नहीं करेंगी। साथ ही काशिराज की पुत्रियां होने के कारण वे वैदिक मान्यताओं को स्वीकार करते हुए पुनर्विवाह स्वीकार नहीं करेंगी। अतः मैंने कहा, "मेरा अभिप्राय रानियों से है।"

"वे क्यों नहीं मानेंगी? उनको मानना होगा।" राजमाता ने आवेश में कहा। फिर कुछ विचार कर बोलीं, "वे मान जाएंगी। आप कृष्ण द्वैपायन के पास जाइये और मेरी ओर से उनको आग्रहपूर्वक कहिये।"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब मैंने कृष्ण द्वैपायन से राजमाता सत्यवती का प्रस्ताव रखा और वह तुरन्त मान गये। मैंने कुछ जानकारी प्राप्त करने के लिए कहा, "भगवन्! मैंने राजमाता से कहा भी था कि आप ब्रह्मचारी हैं और आपने विवाह न करने का निश्चय कर रखा है, परन्तु राजमाता ने आग्रह करके मुझे आपके पास भेजा है।"

कृष्ण द्वैपायन बोले, "संयज जी, मेरे लिए माता की आज्ञा सर्वोपरि है। मैं हस्तिनापुर जाऊंगा। आप कब चल रहे हैं?"

"महाराज, आप मेरा रथ ले जाइये। मैं यहां से पिताजी के आश्रम को जा रहा हूं। वहां से कश्मीर होता हुआ हस्तिनापुर लौटूंगा।"

मैंने अपना रथ महर्षि को दे दिया और स्वयं गन्धमादन पर्वत की ओर भाड़े के रथ में चल पड़ा।

:5:

कृष्ण द्वैपायन से महारानी अम्बिका के धृतराष्ट्र तथा अम्बालिका के पाण्डु पुत्र हुए। उनकी दासी से विदुर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार राज्य परिवार में तीन बालक उत्पन्न हुए। परन्तु विधि की विडम्बना थी कि धृतराष्ट्र अन्धा हुआ, पाण्डु था तो बलवान परन्तु दुर्बल प्रकृति का था। वह राज्य कार्य में रुचि नहीं लेता था तथा कोई भी उत्तरदायित्व का कार्य स्वीकार नहीं करता था। दासी-पुत्र विदुर धर्मात्मा प्रकृति का था, परन्तु उसको राज्य देने का प्रश्न ही नहीं था।

समस्या फिर सामने आई कि राज्य का उत्तराधिकारी कौन हो? बड़ा पुत्र होने के कारण धृतराष्ट्र उत्तराधिकारी था, परन्तु वह अन्धा था, राज्य- कार्य के अयोग्य था। पाण्डु के छोटा होने के कारण राजमाता सत्यवती का उससे स्नेह भी कम था, साथ ही वह राज्य-कार्य में विशेष रुचि नहीं लेता था। वह प्रायः शिकार खेलने जंगल-जंगल घूमा करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः परिवार में पुनः गोष्ठी हुई और उसमें यह निश्चय किया गया कि बड़े होने पर धृतराष्ट्र तथा पाण्डु, दोनों में से, जिसके सन्तान पहले हो, वह राज्य का उत्तराधिकारी बने।

विवाह के पश्चात् मैं अपने परिवार के साथ हस्तिनापुर में ही रहने लगा। समय पर दोनों राजकुमारों के भी विवाह हुए, धृतराष्ट्र का गान्धारी के साथ तथा पाण्डु का कुन्ती एवं माद्री के साथ। धृतराष्ट्र स्वयं अन्धा था और जब उसकी पत्नी गान्धारी ने देखा कि उसका पति अन्धा है तो उसने भी आंखों पर पट्टी बाँध ली और आजन्म अन्धी बनी रही।

पाण्डु ने भूल से एक ऋषि की हत्या कर दी। मनुष्य की हत्या और वह भी एक ऋषि की, यह एक पाप कर्म हो गया और इसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। पाण्डु के मन में घोर वैराग उत्पन्न हो गया और वह अपनी दोनों पत्नियों के साथ वन में जाकर एक आश्रम में रहने लगा।

उसके पांचों पुत्र वन में ही उत्पन्न हुए थे। युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव। पांचों के पांचों अति सुन्दर, सबल और बुद्धिमान थे। वैसे पाण्डु का पुत्र युधिष्ठिर बड़ा था और धृतराष्ट का पुत्र दुर्योधन छोटा था। परन्तु अब झगड़ा स्वार्थों का था। धृतराष्ट्र स्वयं बड़ा होने के कारण स्वयं को राजा कहता था और चाहता था कि उसका पुत्र दुर्योधन राजा बने जबकि पाण्डु समझता था कि धृतराष्ट्र तो नाम का राजा है और वह वास्तविक राजा है, इस कारण उसका पुत्र युधिष्ठिर राजा बने। साथ ही निर्णय के अनुसार युधिष्ठिर दुर्योधन से बड़ा था। इस कारण भी वह ही राज्य का उत्तराधिकारी था। परन्तु दुर्भाग्य यह हुआ कि पाण्डु का स्वयं देहान्त हो गया।

वन में एक आश्रम में सब लोग रहते थे। समीप ही कई ऋषि भी रहते थे। अतः पाण्डवों पर ऋषियों का भारी प्रभाव था। ऋषियों ने ही उन्हें लिखाया-पढ़ाया तथा शिक्षा दी।

यहीं भारी अन्तर आ गया पाण्डवों में और धृतराष्ट्र पुत्रों में। दुर्योधन तथा दुःशासन इत्यादि सौ भाई थे। वे सब राजभवन में रहते थे। उनके लिए धर्म वह था जो उनको अच्छा लगे। वे सब पर अपना अधिकार मानते थे। उनके साथियों में था उनका मामा शकुनि, जो महाधूर्त तथा दुष्ट प्रकृति का था।

जब पाण्डव कुछ बड़े हुए तो ऋषियों ने यह उचित समझा कि ये राज्य के उत्तराधिकारी बालक अब राजधानी में राज्य-प्रासाद में जाने चाहियें जिससे इनको राज्य कार्य की शिक्षा मिल सके। ऋषियों को विदित था कि भीष्म जी ने यह घोषणा कर रखी है कि धृतराष्ट्र तथा पाण्डु में जिसका पुत्र ज्येष्ठ होगा, वही राज्य का उत्तराधिकारी होगा और वे जानते थे कि युधिष्ठिर ज्येष्ठ है।

अतः एक दिन ऋषिगण अपने साथ पांचों पाण्डवों तथा माता कुन्ती को लेकर राजधानी में आ पहुंचे। पहले वे एक पंथागार में ठहरे तथा उन्होंने राज्य-प्रासाद में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचना भेज दी कि पाण्डव आ गये हैं।

इससे राज्य-प्रासाद में खलबली मच गई। दुर्योधन इत्यादि नहीं चाहते थे कि पाण्डव आएं। वे तो उनको राज्य का अधिकारी मानते ही नहीं थे। फिर उन्हें भय था कि पाण्डव उनसे अधिक योग्य हैं और यदि राज्य उनके हाथ में चला गया तो वे कौरवों को पकड़ कर बन्दीगृह में डाल देंगे। अतः उन्होंने पाण्डवों के राज्य-प्रासाद में आने का विरोध कर दिया।

इस पर राज्य-परिवार की एक सभा की गई। इस सभा में दुर्योधन इत्यादि भाई तो थे ही, साथ ही शकुनि भी था और धृतराष्ट्र था तथा दुर्योधन की माता गान्धारी थी। मन्त्रियों में मुझे भी बुलाया गया था।

दुर्योधन का कहना था, "पाण्डवों को आज्ञा दे दी जाये कि वे नगर से बाहर वन में चलें जाएं अन्यथा उनको पकड़ कर बन्दी बना लिया जायेगा।"

धृतराष्ट्र का कहना था, "देखो बेटा, भीष्मजी का निश्चय था कि हम दोनों भाइयों में जिसका पुत्र बड़ा होगा, वही राज्य का अधिकारी होगा।"

"परन्तु तात! भीष्म जी कौन होते हैं राज्य के अधिकारी का निर्णय करने वाले? हमें तो यह बताया गया है कि उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी कि राज्य पर उनका कोई अधिकार नहीं होगा और इसी कारण उन्होंने विवाह भी नहीं किया था जिससे उनकी सन्तान अपना अधिकार न बना ले।"

इस पर मैंने कहा, "राजकुमार, भीष्म जी का त्याग ही उनका सबसे बड़ा अधिकार है। उन्होंने आपके बाबा तथा बाबा के परिवार के लिये ही यह त्याग किया था और यही कारण है कि आपके पिता उनके प्रति कृतज्ञता अनुभव करते हैं और उनके अधिकार को मानते हैं।"

"ये सब व्यर्थ की बातें हैं। मुझे यह विदित है कि मेरे पिता महाराज हैं और मैं उनका बड़ा पुत्र होने से राज्य का उत्तराधिकारी हूं। यदि पाण्डवों ने मेरे अधिकार को चुनौती दी तो ठीक नहीं होगा।"

इतना कह क्रोध में दुर्योधन सभा से उठकर जाने लगा। इस समय मैंने दुर्योधन को रोक कर कहा, "राजकुमार, मेरी एक बात सुनते जाएं। पाण्डव इस समय पंथागार में ठहरे हुए हैं और यह सूचना है कि प्रजागण की भीड़ की भीड़ उनके दर्शनों के लिये वहां पहुंच रही है। सभी यह समझते हैं कि वे राज्य के उत्तराधिकारी हैं। अतः यदि उनको राज्य-प्रासाद में स्थान न दिया गया तो प्रजा विद्रोह पर उतर आयेगी और उस अवस्था में आप कुछ नहीं कर सकेंगे।"

दुर्योधन ने कहा, "राज्य के पास सैनिक हैं। भला प्रजा सैनिकों का विरोध किस प्रकार करेगी?"

"सेना विदेशी आक्रमणों से देश के बचाव के लिये होती है, अपनी प्रजा का विरोध करने के लिये नहीं होती। फिर सैनिक भी जानते हैं कि युधिष्ठिर ही राज्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तराधिकारी है। सेना उनका विरोध क्यों करेगी? यह भी सम्भव है कि सेना आपको विद्रोही समझ आपका ही विरोध करे।"

इस स्थिति ने दुर्योधन को तो चुप करा दिया, साथ ही धृतराष्ट्र को भी भयभीत कर दिया। धृतराष्ट्र ने कह दिया, "ठीक है संजयजी! पाण्डवों को राज्य-प्रासाद में स्थान मिलना चाहिये। आप जाइये और सम्मान सहित मेरे भाई के पुत्रों को तथा उनकी माता को ले आइये। पाण्डवों की उचित शिक्षा का प्रबन्ध भी आप ही करिये।"

सभा समाप्त हुई तो दुर्योधन अपने भाइयों तथा अपने मामा शकुनि को लेकर चला गया।

:6:

अब पाण्डव भी राज्य-प्रासाद में आकर रहने लगे तथा सभी राजकुमारों की शिक्षा का प्रबन्ध एक साथ हो गया।

सभी भाइयों में भीम सबसे बलवान था। वह खूब खाता-पीता था तथा व्यायाम भी खूब करता था। मस्त रहता था और खेल-खेल में सबको पटकी दे देता था। इस सबका परिणाम यह हो रहा था कि दुर्योधन इत्यादि कौरवों में पाण्डवों के प्रति द्वेष की अग्नि बढ़ रही थी। राज्य-प्रासाद में दो गुट बन गये थे। कौरव और उनके मामा शकुनि अपनी गोष्ठियां किया करते थे और पाण्डवों को गालियां सुनाया करते थे।

सबसे अधिक चिन्ता की बात यह थी कि परिवार के वृद्ध-जन उनकी बातों में हस्तक्षेप नहीं करते थे और यदि कभी करते भी थे तो सदा दुर्योधन का पक्ष लेते थे।

इस प्रकार की स्थिति चल रही थी कि एक दिन भीष्मजी का प्रतिहार मुझे बुलाने आ पहुंचा। मैं हैरान रह गया। कारण यह था कि यह बुलावा कई वर्षों के उपरान्त आया था। मैं महाराज धृतराष्ट्र के पास तो जाता रहता था। धृतराष्ट्र के आदेश पर मैं देश-विदेश घूमता रहता था और उन देशों का वर्णन मैं महाराज को सुनाया करता था, परन्तु भीष्म जी ने कभी मुझ में रुचि नहीं ली थी। अतः आज का बुलावा आश्चर्य में डालने वाला था।

मैं उनके आगार में पहुंचा तो उनके समीप विदुर जी भी बैठे थे। मैं समझ गया कि कोई विशेष घटना घटी है।

मैंने प्रणाम किया तो मुझे समीप बैठने को कह विदुर जी बोले, "संजय जी! कल यहां एक दुर्घटना हो गयी प्रतीत होती है। राजकुमार दुर्योधन के सुझाव पर सभी राजकुमार गंगा तट वाले उद्यान में जल-क्रीड़ा तथा खेल-कूद के लिये गये थे। रात्रि वे वहीं रहे और आज प्रातः लौटे हैं, परन्तु भीम उनके साथ नहीं है।

"पाण्डु-पत्नी कुन्ती मेरे निवास पर रुदन करती हुई आईं और कहने लगी कि उन्हें सन्देह है कि उसकी हत्या कर उसका शव गंगा में बहा दिया गया है।"

मैं आश्चर्य से उसका मुख देखता रहा गया। फिर मैंने पूछा, "भीम की हत्या का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्देह क्यों किया जा रहा है?"

"युधिष्ठिर का कहना है कि जल-क्रीड़ा का कार्यक्रम दुर्योधन के आग्रह पर बना था। भोजन का प्रबन्ध उसके हाथ में था। फिर भोजन के उपरान्त सभी भाई गहरी नींद में निमग्न हो गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके भोजन में कोई मादक-द्रव्य डाला गया था। भीम खाता अधिक है और इस कारण उस मादक-द्रव्य का उस पर अधिक प्रभाव पड़ा होगा। शायद बाद में जब सब सो गये तो उसकी हत्या करके उसे नदी में बहा दिया गया, क्योंकि प्रातः उठने पर जब भीम की खोज की गई तो दुर्योधन और उसके भाई कहने लगे कि भीम उठकर कदाचित् राज्य-प्रासाद को चला गया है। ऐसा कभी होता नहीं। भीम भाइयों को छोड़कर अकेला क्यों चला गया और फिर वह राज्य-प्रासाद में पहुंचा ही नहीं।"

पूर्व इसके कि मैं कुछ कहता, भीष्म जी बोले, "यह सब अनुमान मात्र है। इसका कोई प्रमाण नहीं है।"

मैंने कहा, "श्रीमान्! अनुमान भी प्रमाण हो सकता है जब कि यह किसी तथ्य की ओर संकेत करे। इस कारण मेरा आग्रह है कि तथ्य की खोज करनी चाहिये।"

अब भीष्म जी बोले, "ठीक है संजय जी! आप तथ्य का पता करिए। फिर देखेंगे कि क्या किया जा सकता है।"

मैं महाराज धृतराष्ट्र से मिलने उनके आगारों में जा पहुंचा। महारानी गान्धारी उसके पास बैठी थीं। जब मुझे उनके सामने लाया गया तो मैंने उन्हें प्रणाम कर कहा, "महाराज! राजकुमार भीम लापता है।"

"तो हम क्या कर सकते हैं?" महारानी गान्धारी बोल उठीं।

"महारानी जी! ऐसा सन्देह किया जा रहा है कि किसी ने उसकी हत्या कर दी है और उसका शव गंगा में बहा दिया है।"

"यह कैसे हो सकता है! आप दुर्योधन से कहकर इसकी जांच कराइये।"

"महारानी जी! यह सन्देह किया जा रहा है कि दुर्योधन तथा उसके भाइयों ने षड्यन्त्र कर उसकी हत्या कराई है। इस कारण दुर्योधन उसकी जांच क्यों करायेगा।"

"यह झूठ है।"

"ठीक है महाराज! परन्तु लोगों का सन्देह तो तभी दूर होगा जब कि निष्पक्ष जांच कराई जाये अन्यथा प्रजा में यह बात फैल गई तो बहुत बुरा होगा।"

अब महाराज तथा महारानी चुप कर गये। मैंने कुछ देर प्रतीक्षा की और फिर कहा, "महाराज! मुझे भीष्म जी ने बुलाकर कहा है कि मैं इस विषय में जांच कराऊं। अब आपकी क्या आज्ञा है?"

"ठीक है संजय जी! आप जांच करिये और जो पता लगे, हमें बताइये।"

"जैसी आपकी आज्ञा।"

उनसे विदा लेकर मैं दुर्योधन के आगार में जा पहुंचा। उसके आगार में वातवेग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अन्य भाइयों की गोष्ठी हो रही थी। जब मेरे आने की सूचना उनको मिली तो दुर्योधन आगार के बाहर मुझसे मिलने आ गया। साथ में उसका भाई वातवेग भी था। मैंने कहा, "राजकुमार! आपको विदित है कि भीम लापता है।"

"नहीं तो। हमें विदित नहीं। रात वह गंगा-तट वाले उद्यान में सोया था। प्रातः वह वहां नहीं था। हम समझे कि वह नगर को लौट आया है।"

"परन्तु वह नहीं लौटा और किसी ने उसे लौटते देखा भी नहीं।"

"हमें विदित नहीं। हम इस विषय में कुछ नहीं जानते।"

इतना कह दुर्योधन आगार के भीतर चला गया। वातवेग भी उसके पीछे-पीछे चला गया।

मैंने दोनों कुमारों के चेहरों के भाव-से अनुमान लगाया कि सब भयभीत हैं और इस घटना के रहस्य को प्रकट होने से रोकने के लिए षड्यन्त्र कर अपने कथन और व्यवहार को छिद्ररहित कर चुके हैं। अतः उनसे अधिक जान सकने की आशा छोड़ मैं गंगातट वाले उद्यान में जा पहुंचा।

मैंने उद्यान की परीक्षा की। वहां के सेवकों से प्रश्नोत्तर करने पर एक बात का पता चला कि पाचकों ने प्रत्येक प्रकार के भोज्य पदार्थ पांडवों और कौरवों के लिए पृथक्-पृथक् बर्तनों में बनाये थे। दोनों को परोसने में सावधानी का प्रयोग किया गया था, जिससे जो भोजन पांडवों के लिए बना था, उन्हीं को मिले।

इससे युधिष्ठिर का कथन कि कोई मादक-द्रव्य उनको भोजन में दिया गया है, सिद्ध होता था। इस पर भी यह पूर्ण रूप-से निर्णायक नहीं माना जा सकता था।

मैं वहां से पाचक के निवास स्थान पर पहुंच गया। पाचक घर पर नहीं था। वह दुर्योधन के प्रासाद की ओर गया हुआ था। पाचक की पत्नी घर पर थी।

जब मैंने उसको बताया कि रात उद्यान में पांडु-पुत्रों को विष मिलाकर भोजन दिया गया था, तो पाचक की पत्नी का मुख विवर्ण हो गया।

यह बात मुझे विदित थी कि प्रजा में अधिकांश लोग पांडवों से प्रेम करते हैं। मैं अपनी उक्त सूचना को एकाएक देकर पाचक की स्त्री से पूर्ण वृत्तान्त, जो वह जानती थी, सुनने की आशा करता था। अतएव अपने कथन की प्रतिक्रिया उस स्त्री के मुख पर देख कहने लगा, "देवी! यह एक अति गम्भीर बात हुई है। यदि वास्तविक अपराधी न पकड़ा गया तो पाचक दोषी माना जायेगा और संभव है वह सूली पर चढ़ा दिया जाये।"

इससे तो वह थर-थर कांपने लगी। उसने कम्पित स्वर में कहा, "कल प्रातःकाल, राजकुमार दुर्योधन का एक प्रतिहार मेरे पति को एक डिबिया दे गया था और कह गया था कि उसमें एक दिव्य औषध है, जो केवल पांडु-पुत्रों के भोजन में ही मिलाने के लिए है।

"आज मेरे पति राजकुमार के आवास पर जाने से पूर्व मुझको वह औषध दे गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। मैंने पूछा कि इसके खाने से क्या होता है, तो उन्होंने बताया कि इसके खाने से ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं।"

"वह औषध मुझे दे दो।" मैंने आग्रहपूर्वक कहा।

"आप उस औषध का क्या करेंगे?"

"अपने ज्ञान-चक्षु खोलने के लिए उसका प्रयोग करूंगा।"

वह मेरे कथन का अर्थ नहीं समझी। उसने कहा, "मैंने उसमें से थोड़ी अपने भोजन में मिलाकर खा ली है।"

"तो शेष मुझको दे दो।"

"मेरे पति नाराज़ होंगे।"

"भली स्त्री! वह विष है। वह मुझे शीघ्र दे दो। मैं विषों के जानकार से मिलकर पता करना चाहता हूं कि वह कैसा विष है और इसका प्रतिकार क्या है। यह जानकर ही तुम्हारा जीवन बचाया जा सकता है। उसका मैं यत्न करूंगा। कहीं खाए हुए अधिक समय बीत गया तो तुम्हारा जीवन बचाना असम्भव हो जायेगा।"

इस पर तो उसका मुख विवर्ण हो गया। उसने अनुभव किया कि उसका सिर घूमने लगा है। वह भीतर गयी और लड़खड़ाते पगों से बाहर आ एक डिबिया, जो उसके हाथ में थी, मुझको देकर बोली, "शीघ्रता करिये। मेरा सिर भारी हो रहा प्रतीत होता है।"

मैं समझ रहा था कि उस औरत के प्राण बचाने चाहिएं, अन्यथा इस हत्या का रहस्योद्‌घाटन करने वाला एक व्यक्ति नहीं रहेगा। अतः मैं भागा हुआ विष-विज्ञान-वेत्ता पंडित चक्रधर के निवास-स्थान पर जा पहुंचा। वहां पंडितजी को उस डिबिया में रखी कृष्ण वर्ण की औषध दिखाकर पूछने लगा, "पंडितजी! तनिक बताइये कि यह कौन-सा विष है?"

पंडितजी ने डिबिया देखते ही कह दिया, "यह डिबिया तो मेरे यहां की है। आपको कहां से मिली है?"

"इसमें यह क्या रखा है?" मैंने पूछा।

"यह कालकूट विष है।"

"इसकी प्रतिकारक औषध क्या है?"

"सर्प विष।"

"तो भगवन्! यह एक स्त्री ने खा ली है। उसको चलकर बचाइए।"

"कौन है वह?"

"राज्य-प्रासाद के पाचक की पत्नी है। यह तो वही बता सकती है कि यह डिबिया उसके पास कैसे पहुंची! वह कहती थी कि उसने अपने ज्ञान- चक्षु खोलने के लिए ही इसका सेवन किया है।"

चक्रधर इस सूचना से गम्भीर हो उठा। वह भीतर गया और एक अन्य डिबिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर मेरे साथ पाचक के गृह की ओर चल पड़ा।

हमारे वहां पहुंचने पर हमें वह स्त्री अचेत पड़ी मिली। इस पर भी उसका देहावसान नहीं हुआ था।

पंडितजी ने उसकी एक पिंडली नंगी कर दी और अपने साथ लायी डिबिया में से एक सर्प निकालकर उससे उसकी पिंडली पर दंश करवा दिया।

उसने सर्प को डिबिया में बन्द कर दिया और स्वयं उस दंश का प्रभाव देखने लगा।

पाचक की पत्नी छटपटाने लगी और फिर धीरे-धीरे शान्त होने लगी। चौथाई घड़ी में वह देह छोड़ गयी। उसकी इस प्रकार देह छोड़ते देख पंडितजी ने कह दिया, "इस स्त्री ने विष बहुत कम मात्रा में खाया प्रतीत होता है। इसी कारण सर्प-विष का प्रभाव उससे अधिक हो गया है और यह प्राण छोड़ गयी है।"

इसी समय पाचक आ गया। अपनी स्त्री की मृत्यु सुन वह सिर धुनने लगा। वह ऊँचे-ऊँचे स्वर में रुदन करने लगा।

मैं और चक्रधर वहां से चले आये। मुझे दुःख इस बात का था कि दुर्योधन के अपराधी होने का एक प्रमाण लुप्त हो गया था।

भीम की मृत्यु का समाचार नगर-भर में फैल गया और पूर्ण प्रजा में भारी शोक व्याप्त हो गया। प्रायः पुरवासियों को यह विश्वास था कि भीम की हत्या कौरवों ने की है।

दुर्योधन और उसके भाई भयभीत थे और किसी से कुछ नहीं कहते थे।

पाण्डवों के प्रासाद में शोक छा गया। उद्यान में जल-क्रीड़ा के दस दिन पश्चात्, एक दिन एकाएक भीम रथ पर सवार हस्तिनापुर आ पहुंचा। पत्थर के पथ पर रथ चलने की गड़गड़ाहट सुन लोगों ने वेग से भागते रथ को देखा, भीम को पहचाना तो भीम और पांडवों की जय-जयकार के घोष करने लगे।

देखते-देखते सहस्रों नागरिक रथ के साथ-साथ भागते हुए, राजकुमार भीम की जय-जयकार करते हुए प्रासाद के भीतर आ पहुंचे।

भीम राज्य-प्रासाद में पहुंच, सबसे पहले अपनी माता कुन्ती के आवास में गया। कुन्ती उसको देख, उसके लिए अपना शोक छोड़ भागकर उससे गले मिली और वात्सल्यता से परिपूर्ण आंसू बहाने लगी।

आवास के बाहर, परन्तु राज्य-प्रासाद के भीतर, एक खुले प्रांगण में सहस्रों लोग, भीम के जीवित लौट आने की सूचना पा एकत्रित हो चुके थे। सब गगनभेदी स्वर में पांडवों की जय-जयकार करने लगे थे।

वहां इतना बड़ा जनसमूह देख शकुनि पहुंच गया। उसने देखा कि राज्य-प्रासाद के सब संरक्षक, सुभट्ट और प्रतिहार भी वहां एकत्रित हो रहे हैं और इन जयघोषों को सुन राज्य-परिवार के सदस्य भी समझ रहे थे कि कुन्ती के आवास में कुछ विशेष घटना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-M
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटी है। अतः छोटे-बड़े सब लोग कुन्ती के आवास में आ पहुंचे थे।

शकुनि भीड़ के जयघोषों को सुन प्रजा को चुप करा पूछने लगा, "इन जयघोषों का क्या अर्थ है?"

एक ने कह दिया, "राजकुमार भीम के लौटने के उपलक्ष्य में हम अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं।"

"क्या राजकुमार के किसी कार्य से बाहर जाने और फिर लौटने पर इतना हल्ला करना चाहिए?"

उसी व्यक्ति ने पूछा, "क्या राजकुमार भीम किसी कार्य-विशेष से हस्तिनापुर से बाहर गये हुए थे?"

"हाँ, वे एक विशेष कार्य से गए थे और प्रसन्नतापूर्वक लौटे हैं।"

"तो महारानी कुन्ती का निवास-गृह शोक-ग्रस्त क्यों था? उनके रुदन का शंब्द तो राज्य-प्रासाद के बाहर तक सुनाई देता था।"

"यह सब दिखावा मात्र था।"

इस पर एक अन्य ने, भीड़ में से कह दिया, "तुम झूठ बोलते हो। हम राजकुमार भीम के मुख से सुनना चाहते हैं।"

इससे शकुनि के मस्तक पर भृकुटि चढ़ गई। उसने राज्य-प्रासाद के संरक्षकों को संकेत से आज्ञा दे दी कि भीड़ को राज्य-प्रासाद से बाहर निकाल दिया जाये। बस फिर क्या था! संरक्षक अपने-अपने खड्ग निकालकर भीड़ पर टूट पड़े।

पांच-दस तो पहले ही वार में मृत्यु के घाट उतार दिये गए। शेष भाग खड़े हुए। इस पर भागती भीड़ के पांवों तले सैकड़ों रौंदे गये और बीसियों यमलोक को सिधार गये।

:7:

राज्य-प्रासाद का प्रांगण भीड़ से रिक्त हुआ तो मृत शवों को उठा- उठाकर प्रासाद के बाहर फेंक दिया गया, जिससे मृतकों के सम्बन्धी उन शवों को उठा सकें। संरक्षकों ने प्रासाद के द्वार पर सुरक्षा का प्रबन्ध कड़ा कर दिया।

कुन्ती के आवास में सब वृद्धजन तथा दुर्योधनादि राजकुमार एकत्रित हुए तो भीम से उसके लापता होने के विषय में पूछा जाने लगा। भीम ने अपनी कथा सुना दी।

मैं भी यह सब हल्ला सुनकर समझ गया था कि भीम जीवित लौट आया है। अतः मैं भी कुन्ती के आवास में पहुंच गया था। मैंने भी जब भीम की कथा सुनी तो मेरी और विदुरजी की धारणा, कि दुर्योधन ने हत्या का प्रयास किया है, का समर्थन हो गया।

भीम ने बताया, "पितामह! आपकी कृपा से मैं अधिक खाता हूं। जितना मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
167963

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब भाई खाते हैं, मैं अकेला ही खाता हूं। साथ ही भोजन अति स्वादिष्ट था। मैंने उस सांयकाल, सबके सम्मिलित भोजन से भी दुगना खाया होगा। परिणाम यह हुआ कि मैं सबसे पहले नींद में निमग्न हो गया। मुझे अपने तन-मन की सुध नहीं रही थी।

"जब मैं जागा तो मैं रस्सियों में जकड़ा हुआ था। मेरे सब वस्त्र भीग रहे थे और मुझको शीत लग रहा था। मेरे चारों ओर नाग लोग खड़े मुझको उत्सुकता से देख रहे थे। जब मुझको चेतना हुई तो उन्होंने मेरे बन्धन खोलकर मुझको मुक्त कर दिया और सब मेरी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगे।

"मैंने अपना परिचय दिया और अपने बंधे होने के कारण से अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। इस पर उन्होंने बताया कि मुझको विष दे दिया गया था। मैं अचेत-सा गंगा में बहा जाता था। उन्होंने मुझको देखा, निकाला और मेरे विष का परीक्षण कर, उसका निराकरण किया। मैं बच गया तो मेरे बन्धन खोल दिये।

"मैंने उनका धन्यवाद किया। तत्पश्चात् वे मुझे अपने राजा वासुकि नाग के पास ले गये। वहां मेरा परिचय सुन मेरे नाना के नाना आर्यन ने तथा नागराज ने मेरा बहुत आदर-सत्कार किया। मेरे साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार किया और सात दिन तक मेरी चिकित्सा कराकर मुझको पूर्ण रूप-से स्वस्थ हो जाने पर यहां आने की स्वीकृति दे दी है।"

इस पर शकुनि ने पूछ लिया, "तो भीम नहीं जानता कि किसने उसको बांधा था और गंगा में बहा दिया था?"

"मैंने देखा नहीं; मैं अचेत था। भोजन में विष था, इसमें संदेह नहीं।"

"भोजन विषयुक्त था तो तुम्हारे अन्य भाइयों ने भी तो खाया था। वे तो जीवित रहे हैं।"

"मुझको अधिक विष मिला होगा"

इस पर दुर्योधन ने बात हँसी में उड़ा दी। परन्तु भीष्म ने दुर्योधन की ताड़ना की और कहा, "दुर्योधन! इस बार तुमको क्षमा किया जाता है। पुनः कोई ऐसी बात की तो धर्म-युक्त दण्ड के भागी होगे।"

"कैसी बात न करूं?" दुर्योधन ने मुस्कराते हुए पूछा।

"भाइयों को विष खिलाकर हत्या करने का प्रयास?"

"आपको विश्वास है कि यह मैंने किया है?"

"हाँ, मैंने इस घटना की जांच की है और भीम के कथन से मिलान करने पर यह सिद्ध हुआ है कि तुमने भोजन में विष मिलवा दिया था।"

"संजय जी के कहने की बात कर रहे हैं न? वह तो मेरे शत्रु हैं। उनको मेरे अच्छे कार्य भी बुरे-प्रतीत होते हैं।"

"मुझको उस दिन के पाचक ने सब बात बताई है। मैं समझता हूं कि यदि तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य-परिवार के सदस्य न होते तो मृत्यु-दण्ड पा चुके होते।"

इस पर शकुनि बोल उठा, "पितामह! आपने उस नीच पाचक का विश्वास कर लिया है और राजकुमार का विश्वास नहीं किया?"

"तो क्या पाचक ने झूठ कहा है कि दुर्योधन ने अपने हाथ से उसको विष दिया था।"

"यह झूठ है। इसमें कुछ भी तथ्य नहीं।"

इस प्रकार बात समाप्त हो गयी। जब अपराधी को दण्ड ही नहीं दिया जाना था तो अधिक जांच करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी।

मेरे मन पर इस घटना का अति गम्भीर प्रभाव पड़ा। मैं यह समझने लगा था कि इस अन्याययुक्त राज्य में रहने से किसी का कल्याण नहीं हो सकता। मैं वहां से चले जाने का निश्चय करने लगा।

मेरी पत्नी उर्मिला का कहना था कि हमें अपने बच्चों की शिक्षा उनके बाबा के आश्रम में ले जाकर करनी चाहिये, अन्यथा वे भी दुराचारी हो जायेंगे। हस्तिनापुर के वातावरण में किसी भी बालक का चरित्र ठीक रह सकेगा, इसकी आशा नहीं करनी चाहिए।

अतः एक दिन मैं राज्य से एक लम्बी छुट्टी लेने के लिए महाराज धृतराष्ट्र के आवास में जा पहुंचा। वहां पहुंचते ही मुझको भीतर ले जाकर महाराज के सामने उपस्थित कर दिया। उस दिन महाराज अकेले बैठे विह्वल हो रो रहे थे। मैंने उन्हें पहले इतना दुःखी कभी नहीं देखा था। विस्मयजनक बात यह थी कि उस दिन महारानी उनके साथ नहीं थीं।

मुझको वहां छोड़ सेवक वहां से खिसक गया। इससे मेरी उत्सुकता और बढ़ गयी। मेरे वहां उपस्थित होने से महाराज अनभिज्ञ थे। अतः मैंने अपने वहां होने का संकेत करने के लिए पुनः आगार के द्वार के समीप जाकर खटका कर दिया। खटका सुन उन्होंने मुख ऊपर कर पूछ लिया, "कौन?"

मैंने नमस्कार की और आगार में आकर उनके सामने बैठ गया। वे आँखें पोंछकर बोले, "संजय जी!"

"हाँ महाराज!" मैंने पूछ लिया।

"कब से यहां है?"

मैंने बात बनाकर कहा, "अभी आया ही हूं। आज महारानी जी साथ नहीं हैं। उनका स्वास्थ्य तो ठीक है?"

"ठीक है, बैठ जाइए। मैं आज बहुत दुःख अनुभव कर रहा हूं। मैं नहीं जानता किस प्रकार इससे छुटकारा पाऊँ?"

"महाराज! यदि मैं कोई सेवा कर सकता हूं तो आज्ञा कीजिये।"

"यह किसी के वश की बात नहीं। दुर्योधनादि राजकुमारों ने प्रासाद में भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊधम मचा रखा है। शकुनि उनको इस उच्छृंखलता में प्रोत्साहन देता है।"

मुझे यह विदित था कि दुर्योधन तथा उसके भाई राजप्रासाद में ऊधम मचाते फिरते हैं। मदिरा पीना और भोग-विलास में डूबे रहना ही उनका कार्य था। कदाचित् इसी ओर धृतराष्ट्र का संकेत था। मैं अभी विचार ही कर रहा था कि महाराज कहने लगे, "मैंने महारानी को कहा था कि यह सब उसी का दोष है।[1] एक सौ राजकुमारों को जन्म देकर, उसने भू-भार ही बढ़ाया है। इस पर वह रुष्ट हो गई हैं। मैं अकेला यहां बैठा अपने भाग्य को कोस रहा हूं।"

"महाराज!" मैंने उनको सांत्वना देते हुए कहा, "इसमें महारानी जी का कुछ दोष नहीं है। उन्होंने सौ पुत्रों की प्राप्ति के लिए वर इस कारण मांगा था कि ये सब भाई परस्पर सहयोग देकर कौरव राज्य का तीनों लोकों में विस्तार करेंगे। इन सबको इकट्ठा देखकर किसी भी शत्रु को साहस नहीं हो सकेगा कि वह राज्य के अनिष्ट का विचार कर सके।

"दोष तो महाराज! इनकी शिक्षा में है। इनको किसी ऋषि के आश्रम में शिक्षा मिलनी चाहिए थी। चरित्र की शिक्षा इनको अभी नहीं मिली।

"आचार्य कृपा और आचार्य द्रोण, दोनों धनुर्विद्या के विद्वान होते हुए भी दोनों के जन्मजात संस्कार निकृष्ट हैं। इस कारण उनके मानस-पुत्र, आपके राजकुमार, हीन मन और हीन चरित्र रखते हैं।"

इस सूचना से धृतराष्ट्र के मस्तक पर बल पड़ गये। कृपाचार्य उनके गुरु रह चुके थे। अतः अपने गुरु के प्रति मेरे कथन से वह प्रसन्न नहीं हुए। मैंने उनकी चढ़ी भृकुटि देखकर कहा, "महाराज! इसमें क्रोध करने की कोई बात नहीं। यह एक वस्तु-स्थिति है। इसको समझना चाहिये।

"कृपाचार्य महर्षि गौतम के पुत्र शरद्वान गौतम के जनमद नाम की देवलोक की एक अप्सरा के पुत्र हैं। जनमद बालक को जन्म देकर उसे जंगल की झाड़ियों में छोड़ देवलोक को भाग गई और शरद्वान गौतम भी अपने बालक की चिन्ता छोड़ वहां से चले गये।

"संयोगवश महाराज शान्तनु ने, जो शिकार खेलने जंगल में आये हुए थे, बालक को देखा तो उसे उठाकर प्रासाद में ले आये और उसका पालन-पोषण किया तथा उसको शिक्षा-दीक्षा देकर योग्य बनाया।

---

1. गान्धारी ने व्यास जी से वर मांगा था कि उसके एक सौ पुत्र हों। इस पर व्यास जी ने शल्य-चिकित्सा द्वारा उसके गर्भ को बाहर निकाल उसके एक सौ भाग कर दिए और एक सौ अलग-अलग घटों में डाल दिए। इस प्रकार वैज्ञानिक ढंग से गर्भ बढ़ने लगे। समय पर एक सौ पुत्रों का जन्म हो गया। (आधुनिक भाषा में इसे टैस्ट ट्यूब बेबी कहते हैं)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कृपाचार्य युद्धविद्या में निपुण हैं अतः उनके शिष्य भी युद्धविद्या में निपुण हैं परन्तु आचार और शिक्षा से वे अशिक्षित ही हैं।

"महाराज! इसी प्रकार दोणाचार्य भी वर्णसंकर हैं। भारद्वाज व एक अप्सरा धृताची से उनका जन्म हुआ था।

"महाराज, माता-पिता के संस्कारों का बच्चे पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ये दोनों आचार्य बालकों को आचार-व्यवहार की शिक्षा देने के सर्वथा अयोग्य हैं। इस विषय में जो भी शिक्षा वे देते हैं, उसका प्रभाव कौरवों पर नहीं पड़ता परन्तु पाण्डवों के संस्कार उनसे भिन्न हैं।

"पाण्डवों में कई गुण हैं व शतशृंग पर्वत पर ऋषि आश्रम में रहने से वे सात्त्विक आचार-व्यवहार का अभ्यास रखते हैं। वे नित्य यहां होम करते हैं। जीवन को यज्ञमय बनाने में संलग्न रहते हैं। यही कारण है कि जहां वे परस्पर झगड़ा नहीं करते, वहां उनसे किसी अन्य को भी दुःख नहीं पहुंचता।"

"तो यह महारानी जी का दोष नहीं है?"

"नहीं महाराज! महारानी जी ने तो अधिक सन्तान उत्पन्न कर परिवार का हित-चिन्तन ही किया है। बिगाड़ तो इन आचार्यों की अशुद्ध शिक्षा के कारण हुआ है।"

धृतराष्ट्र ने ताली बजाई तो एक दासी उपस्थित हुई। धृतराष्ट्र ने दासी से कहा, "महारानी जी से कहो, संजय जी आए हैं। वह एक अत्यावश्यक निवेदन करना चाहते हैं। उनके दर्शन की प्रार्थना कर रहे हैं।"

दासी गई और महारानी गांधारी का हाथ पकड़े हुए वहां आ पहुंची। गांधारी बैठी तो मैंने प्रणाम कर दिया। इस पर महारानी ने पूछ लिया—"संजय जी, क्या चाहते हैं?"

इस समय तक दासी जा चुकी थी। महारानी के प्रश्न का उत्तर महाराज ने स्वयं दिया, "प्रिये! मैं भूल कर रहा था। मैंने तुमको बहुत दुर्वचन कहे हैं। अब संजयजी के उपदेश से मुझे ज्ञात हुआ है कि दोष तुम्हारा नहीं। दोष तो उस शिक्षा का है, जो कुमारों को मिल रही है। शिक्षक अशुद्ध शिक्षा दे रहे हैं। वे ठीक बात बताते नहीं। बताते हैं तो उनकी बात प्रभावहीन होती है।"

इस पर मैंने पुनः अपना पूर्ण कथन दुहरा दिया और अन्त में कहा, "महारानीजी! अपने पूर्व-जन्म में बहुत पुण्य-कर्म किये हैं, जिनसे आपको महाराज जैसे देवता पति मिले हैं। जितनी सुगमता से ये अपना दोष मानने पर तैयार हुए हैं, वह इनमें दैवी गुणों के कारण ही है।"

इसके पश्चात् जब महाराज तथा महारानी प्रसन्न हो गये तो मैंने अपने पिताजी के आश्रम, गंधमादन पर्वत पर जाने के लिए अवकाश मांग लिया और वह तुरन्त मिल गया। अगले दिन ही हमने हस्तिनापुर से प्रस्थान कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:8:

हस्तिनापुर से चला तो अपने परिवार को गन्धमादन पर्वत पर पिताजी के पास छोड़कर मैं मथुरा जा पहुंचा।

मथुरा के राजा कंस के विषय में काफी चर्चा चल रही थी और देश-भर में यह विख्यात हो रहा था कि एक महान् विभूति का वहां जन्म भी हुआ है। मैं यहां की स्थिति जानना चाहता था और साथ ही उस महान् विभूति, जिसका नाम कृष्ण था, के दर्शन करना चाहता था।

कंस ने अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव को बन्दीगृह में डाल रखा था। किसी ज्योतिषी ने उसे बता रखा था कि देवकी का पुत्र उसका काल बनकर आयेगा। अतः देवकी के जो भी सन्तान होती थी, उसे वह मरवा डालता था।

परन्तु देवकी की आठवीं सन्तान बच निकली। जेल के पहरेदारों से मिलकर उस सन्तान को वृन्दावन भेज दिया गया और वहां के एक मित्र नन्द की कन्या को कारागार में लाकर कंस के हवाले कर दिया गया। कंस ने उस कन्या को देवकी की सन्तान समझ उसे मरवा डाला।

कंस दुष्ट प्रकृति का राजा था। स्वयं भोग-विलास में लिप्त रहता। उसके सैनिक प्रजा पर अत्याचार करते, प्रजा की धन-दौलत तथा स्त्री-वर्ग लूटकर ले जाते। इस कारण सम्पूर्ण मथुरा राज्य में उसके विरुद्ध वातावरण गरम हो रहा था। यह स्थिति थी जब मैं मथुरा पहुंचा था।

कंस मल्ल युद्ध का शौकीन था। प्रायः मल्ल युद्धों का वह आयोजन किया करता था। जब कंस को विदित हुआ कि देवकी का पुत्र कृष्ण जीवित है तो उसने उसे मरवाने का यत्न कई बार किया, परन्तु वह सफल नहीं हुआ। अब कंस ने एक दंगल की घोषणा करवा दी। उसने राज्य-भर के पहलवानों को आमन्त्रित किया। साथ ही वृन्दावन के कृष्ण को भी निमन्त्रण भेज दिया।

कंस का आशय था कि कृष्ण मल्ल युद्ध के लिए मथुरा आयेगा। कारण यह कि कोई भी योद्धा जब उसे चुनौती दी जाये तो इन्कार नहीं करता था। इन्कार करना हार स्वीकार करना था। इस प्रकार यदि कृष्ण मथुरा में आ गया तो षड्यन्त्र रचकर उसे मरवा डाला जायेगा।

इस दंगल की खूब धूम मची और निश्चित दिन कृष्ण तथा उसका भाई बलराम मथुरा आ पहुंचे। कृष्ण जानता था कि कंस उसे धोखे से मरवा सकता है, इस कारण वह कई योद्धा रक्षार्थ साथ में लाया था।

दंगल का स्थान राज-प्रासाद के भीतर था। जब कृष्ण और बलराम अपने साथियों सहित राज-प्रासाद के द्वार पर पहुंचे तो उन्होंने द्वार पर एक हाथी को खड़े देखा। महावत हाथी पर बैठा था और साधारण लोगों को राज-प्रासाद के भीतर जाने से मना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा था। केवल पहलवान जो दंगल में भाग लेने आये थे, उनको ही भीतर जाने दिया जा रहा था।

अब कृष्ण और बलराम आगे आये तो हाथी ने बढ़कर उनका मार्ग रोक लिया। महावत ने कहा, "प्रवेश पत्र दिखाओ, तभी भीतर जा सकोगे।"

दोनों के पास प्रवेश पत्र थे, परन्तु कृष्ण की योजना यह थी कि यहां छोटा-सा झगड़ा हो जाये और अवसर पाकर उसके साथी जिनके पास प्रवेश पत्र नहीं हैं, वे भी भीतर जा सकें। इस कारण उसने कह दिया, "हम योद्धा हैं, बिना प्रवेश पत्र के भीतर जायेंगे।"

इस पर महावत के संकेत से हाथी ने उनको पकड़ने के लिये सूँड उठाई और कृष्ण चपलता से एक और हट गया। हाथी की सूँड खड़ी रह गयी। कृष्ण हाथी की पीठ की ओर जा पहुंचा था।

पूर्व इसके कि हाथी को महावत घुमाए, कृष्ण ने हाथी की पूँछ पकड़ ली और उसको घसीटने लगा। हाथी के लिये यह एक नया अनुभव था। वह घबराकर पीछे हटने लगा। इस प्रकार देखने वालों को ऐसा प्रतीत हुआ कि हाथी पीछे की ओर घिसटता जा रहा है। दर्शकों ने कृष्ण की जय- जयकार का घोष कर दिया। इससे हाथी और भी घबरा गया। महावत उसको घूमने के लिए संकेत कर रहा था और भीड़ का तुमुल नाद सामने हो रहा था। इससे घबराकर हाथी अपने दोनों पांव उठाकर पिछले पांवों के बल खड़ा हो गया और जोर-जोर से चिंघाड़ने लगा।

यह अवसर देख कृष्ण पूंछ का आश्रय लेकर हाथी की पीठ पर चढ़ गया और लपककर महावत की गर्दन पर सवार हो गया। महावत कृष्ण की इस स्फूर्ति और उसके मन की दृढ़ता देखकर घबरा उठा। अंकुश उसके हाथ से छूट गया। इस समय कृष्ण के एक घूसे से अचेत हो वह हाथी के पांव में जा गिरा।

हाथी भी अपनी पीठ पर हो रहे संघर्ष को अनुभव कर रहा था और न जानते हुए कि कौन किसको मार रहा है, शान्त हो खड़ा हो गया। कृष्ण ने हाथी के सिर में पड़े अंकुश को उखाड़ लिया और पूर्व इसके कि वह अपने पांव में पड़े महावत को पहचान ले, कृष्ण ने वह अंकुश हाथी के कान में दे मारा। हाथी का कान उसका कोमलतम स्थान होता है। हाथी चिघाड़ता हुआ लड़खड़ाकर लेट गया। कृष्ण ने अंकुश के कई वार उस पर किए। हाथी का अंत हुआ, तो एक ही वार से महावत का सिर फोड़, कृष्ण और बलराम रंगभूमि के द्वार पर जा पहुंचे।

भीड़ में खड़ा मैं यह सब देख रहा था। मैं कृष्ण की चपलता, भीड़ के समय भी बुद्धि की स्थिरता और शौर्य देखकर आश्चर्य कर रहा था। मुझे यह भी विश्वास होता जाता था कि वह बालक अवश्य ही भगवान् की आलौकिक शक्ति से युक्त है।

मुझको वहां भीड़ में खड़े-खड़े ही पता चल गया था कि उस हाथी का नाम कुवल्यापीड था और यह माना जाता था कि उसमें सौ हाथियों जितना बल है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी लोग कह रहे थे कि कंस ने इस हाथी को कृष्ण-बलराम की हत्या करने के लिए खड़ा किया था।

कुवल्यापीड के मारे जाने के बाद रंगभूमि का द्वार अरिक्षत हो गया और जब तक अन्य रक्षक वहां आते, भीड़ का बहुत बड़ा अंश रंगभूमि में घुस गया। मैं भी भीड़ के साथ रंगभूमि में जा पहुंचा।

रंगभूमि में एक ओर ऊँचे चौबारे पर भोजराज कंस एक अति सुसज्जित आसन पर विराजमान था। दूसरी ओर एक ऊँचे मंच पर कंस के मित्र, मन्त्री और पक्षपाती आसनों पर बैठे थे। तीसरी ओर मल्ल अपने-अपने करतब दिखाने के लिए लंगर-लंगोट कसे हुए तैयार खड़े थे। चौथी ओर स्थान रिक्त था। पहले उस ओर सर्वसाधारण के लिए स्थान बनाया गया था। परन्तु बाद में किसी को भी आने की स्वीकृति नहीं दी गयी थी और इसलिए यह स्थान रिक्त पड़ा था। अब जब भीड़ भीतर पहुंची तो उस स्थान पर खड़ी हो गई। मैं भी उसी ओर जा खड़ा हो गया।

सर्वसाधारण तब भीतर आते रहे जब तक नए द्वार-संरक्षक खड़े नहीं हो गये। कंस ने चौबारे पर से भीड़ को भीतर आते देखा तो माथे पर त्योरी चढ़ाकर अपने पीछे खड़े सेवक की ओर देखकर कुछ कहा। सेवक चंवर झुला रहा था। उसने चंवर एक ओर रखा और चौबारे से बाहर चला आया। कुछ समय बाद सेवक वापस आया और जब उसने हाथी के मारे जाने का समाचार कंस को सुनाया तो कंस का मुख पीला पड़ गया। तत्पश्चात् कंस ने भीड़ की तरफ देखा तो सबके आगे दो युवकों को खड़ा देख समझ गया कि यही कृष्ण और बलराम हैं।

इस प्रकार उनके छोटे कद, अल्पायु और सूक्ष्म शरीर को देख मन में साहस बांध कंस ने अपने पहलवानों को निकलने का आदेश दिया। इस संकेत को पाकर एक पांच हाथ ऊँचा, हृष्ट-पुष्ट पहलवान आगे निकल अखाड़े में आ खड़ा हुआ। उसने लंगोट कसा हुआ था।

उस पहाड़ तुल्य स्थूलकाय पहलवान ने मैदान में आकर कहा, "मैं धर्ममूर्ति भोजराज कंस महाराज का सेवक चाणूर पहलवान हूं। महाराज ने गोकुल के प्रसिद्ध योद्धा कृष्ण को मेरे साथ मल्ल-युद्ध के लिए आमन्त्रित किया है। कृष्ण अब रंगशाला में आ पहुंचा है। मैं उसको युद्ध की चुनौती देता हूं।"

कृष्ण ने अभी वस्त्र भी नहीं उतारे थे। उसने अपने स्थान से कुछ आगे बढ़कर कहा, "हे चाणूर! तुम बहुत बड़े योद्धा हो। मैं तुम्हारा सम्मान करता हूं, परन्तु मैं तो भोजराज कंस से युद्ध के लिए आया हूं और मेरा महाराज से निवेदन है कि मेरा उनके साथ मल्ल-युद्ध हो जाए।"

उत्तर चाणूर ने ही दिया, "यदि तुम मुझको परास्त कर सके तो पीछे तुम मेरे स्वामी से युद्ध कर सकोगे। वह भी तब होगा जब तुम यह बता सकोगे कि तुम कुलीन हो। भोजवंश शिरोमणि एक साधारण ग्वाले से युद्ध नहीं कर सकते।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण का उत्तर था, "मैं तुमको मच्छर की भांति अल्प बलयुक्त मानता हूं। तुमको पछाड़कर मैं शोभा नहीं पा सकता। मेरी चुनौती भोजराज कंस को है। वह जानता है कि मैं कुलीन हूं। यदि उसकी बहन देवकी अपने पिता की पुत्री है तो उसका पुत्र होने के नाते मैं कुलीन हूं और अपने मामा से दो-दो हाथ करने का अधिकारी हूं।"

इस कथन पर चौथे कक्ष में खड़ी प्रजा ने कृष्ण-बलराम की जयघोष कर दी। इस पर कंस और भी जल-भुन गया। उसका मुख क्रोध से लाल हो गया। उसने अपने हाथ से संकेत कर चाणूर से कृष्ण को पकड़ लेने को कहा।

चाणूर ने आगे बढ़कर कृष्ण की बांह पकड़ ली और उसको अखाड़े की ओर घसीटने लगा। कृष्ण ने कपड़े उतारे बिना ही आगे बढ़कर एक मुक्का तानकर उस पहलवान की कनपटी पर दे मारा। चाणूर इस बज्र समान प्रहार को सह नहीं सका और चक्कर खाकर भूमि पर लेट गया। अब कृष्ण ने पांव की ठोकर से उसकी खोपड़ी चूर-चूर कर दी।

कंस के पहलवानों ने अपने नेता की इस प्रकार हत्या होते देखी तो सब-के-सब एकदम कृष्ण पर लपके। परन्तु बलराम भी सतर्क खड़ा था। वह और उसके साथी भी झट मैदान में आ गये और उन पहलवानों से जूझ गये।

इस समय कृष्ण लपक कर उस चौबारे पर चढ़ गया, जहां कंस बैठा था। पूर्व इसके कि कंस कुछ समझ सके कि वह क्या करे, कृष्ण ने उसकी टांगें पकड़कर उसको नीचे घसीट लिया और उसको अखाड़े में लाकर उसकी छाती पर चढ़ गया।

इस समय तक कंस सर्वथा तेजविहीन हो चुका था। वह नहीं समझ सका कि क्या करे। कृष्ण ने मुक्कों से ही उसको समाप्त कर दिया।

कंस के मित्र और मन्त्री कंस को मरा जानकर भाग खड़े हुए।

उसी समय कृष्ण का उस रंगभूमि में ही अभिषेक हुआ और उसको वहां का अधिपति 'राजा' मान लिया गया। पूर्ण नगर में घर-घर बधाइयां दी जाने लगीं और नाच गाने होने लगे।

:9:

कृष्ण के अभिषेक के पश्चात् मैं वापस गन्धमादन पर्वत पर लौट जाना चाहता था। मथुरा में जो राज्य परिवर्तन हुआ था, उसे देख मेरे मन में उत्साह भर रहा था। मैं चाहता था कि हस्तिनापुर में भी यदि पाण्डव तैयार हों तो कौरवों का कांटा निकाल दिया जाये। परन्तु वहां समस्या कुछ भिन्न थी। वहां राजा धृतराष्ट्र थे और पांडवों के मन में उनके प्रति श्रद्धा थी; भीष्म-द्रोण इत्यादि गुरुजन थे जो कौरवों का पक्ष लेते थे। इस पर भी मैं अब पुनः हस्तिनापुर लौटने की इच्छा करने लगा था।

मथुरा नगर से निकल अभी मैं कुछ ही कोस दूर पहुंचा था कि मेरा मार्ग अवरुद्ध मिला। देवलोक' के राजा देवेन्द्र मेरा मार्ग रोके खड़े थे। मैंने उन्हें पहिचाना तो प्रणाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगा। देवेन्द्र बोले, "संजय जी! बहुत प्रतीक्षा कराई है आपने?"

"तो भगवन्! आप मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे?" मैंने पूछा।

"हाँ, हमारी सूचना थी कि आप इस ओर आ रहे हैं और आपसे आवश्यक कार्य भी था। आइये, आप मेरे साथ मेरे विमान[1] में। हम देवलोक चलेंगे। वहां कुछ दिन ठहरकर आपको वापस आपके पिता के आश्रम पर छोड़ दिया जायेगा।"

मैं देवेन्द्र के विमान में बैठ गया और उसके साथ कुछ ही घड़ी में देवलोक जा पहुंचा।

मुझे यह जानकर विस्मय हुआ कि मथुरा में विप्लव कराने में इन्द्र का भी हाथ है। साथ ही हस्तिनापुर के विषय में भी इन्द्र की एक योजना थी। उसने कहा, "संजयजी, आप बीस वर्ष तक हस्तिनापुर राज्य की सेवा करते रहे हैं और आपने भरसक यत्न किया कि कौरव धर्म परायण बन सकें। बताइये, कहां तक सफल हुए हैं?"

"भगवन्! मैं निराश होकर वहां से आया था। परन्तु अब पुनः एक प्रयास करने के लिए वहां जाना चाहता हूं।"

"ठीक है, परन्तु हम चाहते हैं कि एक बात की ओर आप ध्यान दें। कौरवों का विनाश तो निश्चित है, परन्तु बिना उचित स्थानापन्न का निर्माण हुए विनाश देश के लिए भारी हानिकारक होगा।

"कौरवों का स्थान लेने के लिये हम पांडवों को तैयार करना चाहते हैं, परन्तु दुःख इस बात का है कि जिस वातावरण में वे रह रहे हैं, वे स्वयं भी निर्बुद्धि होते जा रहे हैं। अपने सहयोगी निर्माण करने की अपेक्षा वे अपने विरोधी ही निर्माण कर रहे हैं। साथ ही वे भी अधर्ममय उपायों में लीन होने लगे हैं।"

मैं देवेन्द्र का आशय नहीं समझा। मैंने पूछ लिया, "भगवन् आपने क्या कमी देखी है पांडवों में?"

"अभी कुछ ही दिन पूर्व की एक घटना है। एक दिन गुरु द्रोणाचार्य अपने कौरव-पांडव शिष्यों के साथ मृगया के लिए वन को गए थे। उनके साथ एक कुत्ता भी था।

"ये लोग कई दिन तक वन में भ्रमण करते रहे। एक दिन इनका कुत्ता कहीं भटक गया। कुछ काल के पश्चात् जब वह अपने साथियों के पास वापस आया तो उसका मुख बाणों से भरा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी पर भौंकने लगा होगा और उसका मुख खुलते ही बाणों से भर दिया गया होगा।

1.देवलोक का राज्य कश्मीर के उत्तर में था जहां के राजा इन्द्र कहलाते थे। देवलोक अत्यन्त उन्नत प्रदेश था। राजा के पास विमान थे तथा ऐसे यंत्र थे जिनसे दूर की ध्वनि सुनी जा सके तथा घटनाएं देखी जा सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किसी धनुर्धारी की ऐसी कुशलता देख गुरु और शिष्य, सब-के-सब विस्मय तथा प्रशंसा से भर गए। द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों को कहा, "बेटा, इस कुत्ते के साथ जाकर इस योग्य धनुर्धारी का पता करो। यहां इस बन में मुझसे अज्ञात कौन ऐसा कौशल करने में समर्थ है?"

"शिष्य उस कुत्ते के साथ गये। कुत्ता उनको एक कुटिया के पास ले गया। कुटिया के बाहर एक छावन के नीचे एक निषाद जातीय युवक मिट्टी की बनी एक मूर्ति के सम्मुख बैठा धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था। उन्होंने उस मूर्ति को देखा और पहचाना। वह मूर्ति उनके गुरु द्रोणाचार्य की थी।

"जब ये वहां पहुंचे तो निषाद युवक ने उनका स्वागत किया और कुत्ते के विषय में अपनी सफाई उपस्थित कर दी। उसने बताया, यह मेरे पूज्य गुरुजी की मूर्ति पर भौंकने लगा तो मैंने बाणों से इसका मुख बन्द कर दिया।

"कौन हैं गुरु तुम्हारे?" अर्जुन ने पूछा। निषाद युवक ने बताया, पूज्यपाद श्री द्रोणाचार्यजी। मैंने उनकी मूर्ति स्थापित कर रखी है। यह उनकी कृपा का ही फल है कि मैं एक ही समय में बीसियों बाण चला सकता हूं।"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"मैं निषाद जाति उत्पन्न एकलव्य हूं।"

"इस समाचार को सुन कौरव और पांडव दोनों अति क्षुब्ध मन, गुरु जी के सम्मुख उपस्थित हो अपना रोष प्रकट करने लगे। उनका कहना था, "गुरुजी! आपने हमको कुछ नहीं सिखाया, जो आपने उस निषाद युवक को सिखा दिया है।"

"इस समाचार से द्रोणाचार्य जी की भृकुटि चढ़ गयी। वे वहां से उठे और एकलव्य की कुटिया पर आ पहुंचे। एकलव्य ने उनका वैसे ही आदर-सत्कार किया, जैसे एक गुरु का किया जाता है। उसने उनको आसन दिया, उनके पाद-प्रक्षालन किए और फल-फूल से उनका सत्कार किया।

इस पर गुरुजी ने कहा, "एकलव्य! हम तुम्हारी बाण चलाने की योग्यता से अति प्रसन्न हुए हैं। तुमने इस विद्या में पूर्ण कौशल प्राप्त कर लिया है। तुम्हारे गुरु कौन हैं?"

"भगवन् मैं आपको ही गुरु मानता हूं। मैं आपकी योग्यता से प्रभावित हो आपके पास आपको गुरु बनाने गया, परन्तु आपकी सेवा में पहुंचने में असमर्थ हो, आपकी मूर्ति स्थापित कर और उसको अपना इष्टदेव मानकर अभ्यास करता रहा। अब कुछ प्रवीणता पा ही गया हूं।"

"हम समझते हैं।" द्रोण ने कुटिलता का भाव मन में रख कहा, "तुमने इस विद्या में पूर्ण प्रवीणता प्राप्त कर ली है। हम स्वयं को धन्य मानते हैं। परन्तु एकलव्य, तुमने अपने गुरु को दक्षिणा नहीं दी।"

"भगवन्! मैं बहुत ही निर्धन हूं। इस पर भी आप आज्ञा करिए, जो कुछ भी मेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वह सब आपके चरणों में अर्पण करने को तैयार हूं।"

द्रोणाचार्य जी ने कह दिया, "हम चाहते हैं कि तुम गुरुदक्षिणा में अपने दाहिने हाथ का अँगूठा काटकर हमारे अर्पण कर दो।"

"एकलव्य अति निर्धन था और धनोपार्जन करने के हेतु धनुर्विद्या के अभ्यास में समय लगा रहा था। वह उठ हाथ जोड़ खड़ा हो गया। उसके वस्त्र चीथड़े हो चुके थे और उसके अकिंचन होने में संदेह नहीं हो सकता था। इस पर भी द्रोणाचार्य का यह दारुण वचन सुन, सत्यप्रतिज्ञ एकलव्य ने प्रसन्नवदन अपना अँगूठा काटकर गुरुजी के चरणों में रख दिया। इस पर द्रोण प्रसन्नचित्त वहां से चले आये।

"देखिए संजयजी! द्रोण से हम कुछ अधिक आशा भी नहीं करते; परन्तु हम पांडवों से इसका विरोध तत्काल चाहते थे। पांडव इसका विरोध नहीं कर सके। कारण यह है कि उनकी उस शिक्षा पर, जो उनको ऋषियों के आश्रम में मिली थी, द्रोणाचार्य इत्यादि शिक्षकों की कलुषित शिक्षा का रंग चढ़ने लगा है।

"हम चाहते हैं कि आप हमारी योजना में सहायक हो जायें और कौरवों के स्थानापन्न पांडवों को पथच्युत होने से बचाने के लिए हस्तिनापुर चले जायें।

"हम जानते हैं कि आपको अब वहां पर इनका शिक्षक नियुक्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि वहां से आने के पूर्व आपने धृतराष्ट्र और गान्धारी के सम्मुख उनके गुरुओं के प्रति कुछ कटु सत्य कहा था जिससे वे सब आपसे नाराज हैं। इस पर भी आप वहां रहकर समय-समय पर पांडवों से मिलकर उनको सन्मार्ग का दर्शन कराते रहेंगे।"

"परन्तु भगवन् यदि सेवा-कार्य न मिला तो जीविकोपार्जन किस प्रकार होगा?"

"उसका प्रबन्ध हम करेंगे। आप हमारी सेवा स्वीकार कर लें। इस सेवा में आपको केवल मात्र पांडवों से सम्पर्क बनाए रखना है। उनका समयोचित अपनी बुद्धि अनुसार, मार्ग-दर्शन करना है। मैं आपका पथ-प्रदर्शन नहीं करूंगा। केवल कुछ एक विशेष अवसरों पर आपसे विचार-विनियम करूंगा। इतने स्वतन्त्र जीवन के लिए आपको उचित वेतन मिल जाएगा।"

एकलव्य की क्रथा सुनकर तो मेरे रौंगटे खड़े हो गए थे। मैं द्रोण के इस मानवता-विहीन कर्म की बात को सुनकर विचार करने लगा था कि इस व्यक्ति के मस्तिष्क पर पढ़ने-लिखने का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ।

मुझको अपने पारिवारिक जीवन में रस नहीं रहा। मैं विचार करने लगा, सत्य ही संसार में मुझ जैसे लोगों के लिए बहुत कार्य है।

साथ ही देवेन्द्र से जीवन चलाने के योग्य अर्थिक सहायता का आश्वासन एक भारी प्रलोभन सिद्ध हुआ। मैंने देवेन्द्र का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इसके दो मास पश्चात् मैं और मेरी पत्नी उर्मिला विदुरजी के द्वार पर रथ से उतरे। बच्चों को हम पिताजी के आश्रम में ही छोड़ आये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथ से उतर मैंने विदुरजी के घर का द्वार खटखटाया तो विदुरजी की पत्नी देविका ने द्वार खोला और मुझको पहचान, भीतर ले जाकर आदर-सत्कार से बैठाया।

विदुरजी नदी-तट पर स्नान तथा पूजा के लिए गए हुए थे। उनके लौटने तक मैं सपत्नीक स्नानादि से निवृत्त हो चुका था। विदुरजी मुझे देखकर गद्गद् प्रसन्न हो मुझको गले लगाने लगे।

जब मैंने उनको बताया कि मैं हस्तिनापुर में आपके समीप ही कहीं निवास-स्थान से आपकी संगत में रहना चाहता हूं, तो वे कहने लगे, "संजयजी! आप ऋषिपुत्र होते हुए इस कीचड़ में क्यों आना चाहते हैं? मैं तो भाग्य-पाश में बंधा हुआ, कौरवों के आश्रय होने के कारण; यहां टिका हुआ हूं।"

"भगवन्! आप तो कीचड़ में कमल समान रहते हैं। अतः मैं आपकी संगत का लाभ पाता हुआ, इस कीचड़ में कुछ अन्य सच्चरित्र व्यक्तियों को अलिप्त रखने का यत्न करना चाहता हूं। इसके लिए इस कीचड़ में आकर रहना आवश्यक ही है।"

"यह भी," विदुरजी का कहना था, "भगवदिच्छा से ही हो सकेगा। मेरी शुभकामना आपके साथ है। परन्तु इस पर भी इतना आपको जान लेना चाहिए कि आपको यहां के सेवा-कार्य से मुक्त किया जा चुका है। यहां रहने से पूर्व स्वामियों से क्या सम्वन्ध रहेगा।

"दुर्योधन आपका घोर विरोधी है। पहले धृतराष्ट्र और गांधारी आपकी रक्षा करते थे, परन्तु अब वे या तो अपने को अशक्त पाते हैं अथवा वे भी आपके विरुद्ध हो गए हैं। आपका यहां कोई रक्षक नहीं रहा।"

"मैं यह जानता हूं। मुझको इन सबके विरोध का कारण भी विदित है। इस पर भी मैं यहां भगवान् को आश्रय मानकर आया हूं। एकलव्य के साथ जो बीती है, वैसी बात किसी अन्य के साथ घटने से रोकना चाहता हूं।"

"परन्तु संजयजी! एकलव्य के साथ व्यवहार के कारण द्रोणाचार्य की यहां भारी प्रशंसा की गई है। भीष्म तथा धृतराष्ट्र ने भी आचार्य जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।"

"ठीक है, हम क्षुद्र जीव तो अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार कार्य करने का ही अधिकार रखते हैं। कर्मफल भगवान् के अधीन है।"

ज्यों ही मुझको स्थान मिला और मैं उसमें जाकर रहने लगा, मैं धृतराष्ट्र और भीष्मजी से मिलने गया। मेरे धृतराष्ट्र के आवास के बाहर जाकर सूचना भेजने पर उत्तर आया, महाराज आजकल अति व्यस्त हैं। यदि कोई आवश्यक कार्य हो तो एक सप्ताह के पश्चात् भेंट हो सकती है।

इस अप्रत्याशित उत्तर मिलने पर मैं भीष्मजी के द्वार पर जा पहुंचा। उनसे मिलने की स्वीकृति तुरन्त मिल गयी। औपचारिक प्रणामादि के पश्चात् भीष्मजी ने बैठाया और पूछ लिया, "आप महाराज धृतराष्ट्र से मिले हैं?"

"जी, मैं उनके द्वार पर पहुंचा था? परन्तु मिलने की अनुमति नहीं मिली।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीष्मजी ने मुस्करा कर कहा, "आपने जाने से पूर्व कुछ ऐसी बातें उनको कही थीं जिनसे वे रुष्ट हो गये हैं। आपको चाहिये कि उनसे क्षमा मांग लें।"

"मैंने गुरु कृपाचार्य और द्रोणाचार्य के विषय में कुछ कहा था, परन्तु वह इस कारण कि राजकुमारों को उचित शिक्षा मिल सके।"

"उचित-अनुचित अपना-अपना दृष्टिकोण होता है।"

"ठीक है भगवन्! इसी कारण मैं महाराज से मिलना चाहता था"

"क्षमा तो मिल जायेगी परन्तु राज्यसेवा मिलनी कठिन है।"

"मैं सेवा प्राप्त करने नहीं आया। मैं तो क्षमा प्राप्त कर अपने स्वतन्त्र जीविकोपार्जन में लग जाना चाहता हूं। एक वैदिक पाठशाला चलाने का विचार है।"

"परन्तु इस वैदिक पाठशाला से जीविकोपार्जन कर सकेंगे क्या? कितने विद्यार्थी आ जायेंगे उसमें पढ़ने के लिए?"

"कुछ प्राप्ति तो होगी ही। कुछ न पाने से तो कुछ अधिक मिलेगा। शून्य से तो कुछ भी अधिक होगा।"

"ठीक है, मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं। इस पर भी इतना तो जान लेना ठीक ही होगा कि आजकल धृतराष्ट्र के परामर्शदाता नीतिविशारद पंडित कर्णिक हैं।"

"मुझे विदित है। मैं उनका विरोध नहीं करूंगा।"

"ठीक है। मेरी शुभकामनाएं आपके साथ है।"

पंडित कर्णिक को मैं जानता था। उनके विकृत मनोभावों से भी भली- भांति परिचित था। मुझे इन्द्र की भविष्यवाणी कि कौरवों का सर्वनाश होने वाला है, पर विश्वास हो चुका था। अतः अब मैं देवेन्द्र के कथनानुसार कौरवों का स्थान लेने वाले पांडवों का पथ-प्रदर्शक बनना, उनको सन्मार्ग पर लाना और उनकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझ रहा था। इस कारण मैंने पांडवों से सम्पर्क बनाने के लिए कुन्ती से मिलना आवश्यक समझा।

एक दिन मैं उसके निवास पर पहुंचा। वहां युधिष्ठिर इत्यादि कुमार माँ की चरण-वन्दना करने आए हुए थे। वे मुझे देख अति प्रसन्न हुए। दुर्योधन को मेरा द्वेषी मान वे मुझको अच्छा आदमी मानने लगे थे। यूं तो मेरे विषय में उनको साधारण-सा ही ज्ञान था। वे मेरा तथा मेरे बच्चों का कुशल समाचार पूछने लगे।

कुन्ती देवी मेरे आने का समाचार सुन निवास-स्थान की बैठक में आ गयी। प्रणाम कर मेरे आने का कारण जानने लगी। मैंने कह दिया, "अब मैं राज्य की सेवा में नहीं हूं। अतः जीविकोपार्जन निमित्त इस नगर में एक वैदिक पाठशाला चलाने का विचार रखता हूं। इस दुस्तर कार्यारम्भ से पूर्व नगर के देवी-देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करता-फिरता हूं। भीष्म जी का आशीर्वाद प्राप्त कर चुका हूं। अब देवी का भी आशीर्वाद प्राप्त करने की इच्छा से यहां उपस्थित हुआ हूं।"

इस पर कुन्ती ने कह दिया, "मैं समझती हूं कि उन श्रीमानों की सहानुभूति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशीर्वादों की आपको अधिक आवश्यकता है, जिनके घर में छोटे-छोटे बच्चे विद्याप्राप्ति के योग्य हैं। यहां तो राजकुमारों की शिक्षा सुचारु रूप-से चल रही है।"

"मुझे इसका ज्ञान है; परन्तु देवी, सुचारु शिक्षा का अनुमान अपना-अपना है।"

युधिष्ठिर इत्यादि वहां पर बैठे बातें सुन रहे थे, इसी कारण मैंने उनकी ओर संकेत कर कह दिया, "इनके गुरुओं की आलोचना नहीं कर रहा हूं। इस पर भी मैं इनसे नीति के विषय में एक प्रश्न पूछूँ तो आप क्षमा करेंगी। "कुमार!" मैंने युधिष्ठिर को सम्बोधन कर पूछ लिया—"राजनीति में शत्रुओं का निर्माण करना गुण है अथवा दोष?"

"दोष।"

"परन्तु तुमने एक अतिकुशल धनुर्धारी की मित्रता प्राप्त करने से अपने को वंचित क्यों किया? एकलव्य तुम्हारा शत्रु नहीं था। उसकी निषाद-जाति ने भी तुम्हारे परिवार से कभी शत्रुता नहीं की थी। फिर भी तुमने उसको श्रीविहीन होते देखा। तुमने उसको बचाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। यदि तुम उस समय उसको बचा लेते तो वह किसी समय तुम कुमारों की अतुल सहायता कर सकता था।

"अर्जुन उस समय गुरुजी के पास खड़ा था। जब गुरुजी गुरुदक्षिणा में उससे दाहिने हाथ का अँगूठा मांग रहे थे, तब अर्जुन को इसका विरोध करना चाहिए था।

"देखो युधिष्ठिर, यह गुरु-दक्षिणा नहीं थी। यह तो अकारण कृतज्ञता प्रकट करने का दंड था। गुरुजी ने एकलव्य के लिए क्या किया था, जो उससे इतनी दारुण मांग कर दी?

"परन्तु तुमको न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित और धर्म-अधर्म का विचार छोड़कर भी नीति के विचार से उसकी रक्षा करनी चाहिए थी।"

एकलव्य की घटना को पांचों भाई अपनी दिग्विजय मान रहे थे। वे गुरु द्रोणाचार्य की कुशल नीति की श्लाघा करते नहीं थकते थे। उस दिन मेरा सुझाव सुन वे एक-दूसरे का मुख देखते रह गए। उनके पास कोई उत्तर नहीं था। सबसे पहले युधिष्ठिर ने कह दिया, "तात! यह अधर्म तो हुआ है। इसमें सन्देह नहीं। परन्तु हम समझते हैं कि किसी पौधे के बढ़ने के समय, उसके ऊपर किसी अन्य पेड़ की छाया उसके बढ़ने में बन्धक हो जाती है।"

"परन्तु उसकी छाया पड़ रही थी क्या आप पर? वह छाया आपकी उन्नति में बाधक थी क्या? सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उसकी विद्या आपको अप्राप्य हो रही थी क्या?

"कुमार! यह अधर्म था और फिर व्यवहार में भी हानिकारक है।"

मैं देख रहा था कि कुन्ती मेरी युक्ति सुनकर गम्भीर विचार में निमग्न हो गई थी। वह अभी विचार ही कर रही थी कि मैं प्रणाम कर उनके घर से बाहर निकल आया। केवल युधिष्ठिर उठकर मुझे बाहर छोड़ने के लिए आया। मैं जब उससे विदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांगने लगा तो उसने पूछ लिया—"तात! कहां निवास-गृह लिया है?"

"विदुरजी के पड़ोस में। अभी से वहां पढ़ने वाले विद्यार्थी आने लगे हैं।"

"हम आपको गुरु धारण नहीं कर सकते। ऐसा करने पर दुर्योधन आदि हमसे और भी द्वेष करने लग पड़ेंगे। हमारे गुरुजी भी इसको पसन्द नहीं करेंगे। आपने उनकी जन्म-कथा महाराज को बताकर उनको भारी दुःख पहुंचाया था।"

"मैं तुमको शिष्य बनाने नहीं आया था। मेरा उद्देश्य केवल तुम लोगों की सहानुभूति प्राप्त करना था। हाँ, यदि तुम कभी-कभी मिल लिया करो तो मेरा काम बन जाएगा। मैं केवल मात्र यही चाहता हूं।"

इस पर युधिष्ठिर ने कह दिया, "एकलव्य के विषय में आपका कथन सत्य ही प्रतीत होता है। मुझे इसके औचित्य पर सन्देह था। अब उस सन्देह की पुष्टि हो रही है। मैं विचार करता हूं कि राजा को अपनी प्रजा की उन्नति में प्रसन्नता होनी चाहिए। उन्नत हो रहे व्यक्तियों को अपना मित्र और सहायक बनाना चाहिए। उनका विनाश तो हानिकारक ही प्रतीत होता है।"

"ठीक है! परन्तु राजकुमार! प्रतिभा वही शुभ होती है जो समय पर काम आए। समय निकल जाने पर खड्ग घुमना बुद्धिमानों का काम नहीं।"

:11:

मैं अपने घर पर ही रहता था। नगर के कुछ विद्यार्थी मेरे पास पढ़ने के लिए आने लगे। वेदाध्ययन के साथ-साथ मैं गणित की शिक्षा भी देता था। इस सब समय मेरा पांडवों से सम्पर्क विदुरजी द्वारा बना हुआ था।

मुझे पीछे पता चला कि कुन्ती ने अपने पुत्रों को कहा था कि वे मुझसे मिलते रहा करें और राजनीति के विभिन्न विषयों पर मेरे विचार जानते रहा करें। यही मैं चाहता था। वे मेरे घर पर कभी नहीं आते थे। उन्होंने यह जान लिया था कि मैं किस समय विदुरजी के घर पर जाता हूं। वे उस समय वहां पहुंच जाते थे।

उनसे इस सम्पर्क में मुझे यह पता चल गया था कि वे पांचों भाई सरल-चित्त, शुद्ध विचार वाले और दूसरों पर विश्वास रखने वाले हैं। उनके मन में सबके लिए शुभकामना रहती थी। यथाशक्ति वे दान-दक्षिणा भी देते रहते थे।

उनका मुझसे मेल-जोल छुपा नहीं रह सका। मुझको हस्तिनापुर में विद्यालय खोले एक वर्ष के लगभग हो गया था। एक दिन युधिष्ठिर मुझको कहने लगा, "महाराजा धृतराष्ट्र ने कहला भेजा है कि आप उनसे मिलने कभी नहीं आते।"

"तो उनको विदित है कि आप मुझसे मिलते रहते हैं?"

"वे किसी प्रकार जान गये हैं कि हम आपकी संगत यहां किया करते हैं।"

"इससे वे नाराज़ तो नहीं हैं?"

"यह तो उन्होंने बताया नहीं। हाँ, आज कहते थे कि आप उनसे रुष्ट हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके यहां नहीं आते।"

"राजकुमार! यह बात नहीं थी। वे मुझसे रुष्ट थे। मैं तो उनसे मिलने गया था, परन्तु उन्होंने दर्शन देना स्वीकार नहीं किया। अब जब उन्होंने इच्छा प्रकट की है तो सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।"

दो दिन के पश्चात् मैं उनके स्थान पर पहुंचा और समाचार भीतर भेजा तो मुझको उनके सम्मुख ले जाकर उपस्थित कर दिया गया। मैंने वहां पहुंचते ही महाराज की जय-जयकार बुला दी। मैंने कहा, "कुरुवंश शिरोमणि महाराजाधिराज, भारत-सम्राट् श्रीमान् धृतराष्ट्र तथा लक्ष्मीस्वरूप महारानी जी के चरण-कमलों में संजय का नमस्कार स्वीकार हो।"

धृतराष्ट्र इस अभिवादन को सुन हँस पड़ा। गांधारी के माथे पर त्योरी चढ़ गई। धृतराष्ट्र ने कहा, "संजय जी! यह चारणों की भाषा कहां से सीख आए हैं? हम तो आपको अभी भी अपना गुरु मानते हैं।"

"महाराज को मुझसे अधिक योग्य गुरु मिल गए हैं, ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु मुझको कोई अन्य महाराज और महारानी नहीं मिलीं। अतः मेरा आपके प्रति भाव अपरिवर्तित सेवक का बना है।"

"संजय जी! छोड़िये इस बात को। हमें दुःख है कि आप एक बार आये और पुनः आने का कष्ट नहीं किया।"

"महाराज! मैं तो आपकी आज्ञा का ही पालन कर रहा था। जब मैं अपने पिताजी के आश्रम से लौटा था तो महाराज की सेवा में सबसे पहले उपस्थित हुआ था और महाराज ने यह आज्ञा दी थी कि यदि मुझको कोई अत्यावश्यक कार्य हो तो एक सप्ताह के पश्चात् भेंट हो सकती है।

"मुझे न तो उस समय ही और न उसके पश्चात् ही कभी कोई अत्यावश्यक कार्य पड़ा है। अतः आपको कष्ट देना उचित प्रतीत नहीं हुआ।"

इस पर गांधारी ने तीखे शब्दों में कह दिया, "संजय जी! बहुत कृतघ्न होते जाते हैं आप! हमारा सब कुछ किया भूल गये हैं और एक वर्ष में एक बार भी मिलने नहीं आए। यह कुछ श्रेष्ठ व्यवहार नहीं है।"

"महारानी जी!" मैंने बहुत ही विनम्रता से शब्दों में कहा, "अपने ज्ञान में मैंने कोई ऐसा कार्य नहीं किया, जिससे महाराज तथा महारानी का, अथवा उनके परिवार तथा राज्य का किंचिन्तात्र भी अनिष्ट हुआ हो। यदि भूल से कुछ हो गया हो तो मुझको बताने की कृपा की जाये। मैं उसके लिए दण्ड भोगने अथवा प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार हूं।

"महाराज की आज्ञा कि कार्य होने पर आऊँ, का पालन करना तो किसी प्रकार की कृतघ्नता नहीं कही जा सकती।"

बात धृतराष्ट्र ने टाल दी। उसने पूछ लिया, "बताइये, निर्वाह किस प्रकार होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है?"

"आपकी छत्रछाया में रहते हुए भला कोई जीव भूखा रह सकता है? महाराज, कुछ सेठ्ठियों, महाजनों के बालक विद्याध्ययन करने आते हैं और जीवनयापन सुखपूर्वक हो रहा है।"

"हमें यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई है। पांडव आपकी प्रशंसा करते नहीं थकते। वे मेरा बहुत सम्मान करने लगे हैं। नित्य प्रातःकाल महारानी के चरण-स्पर्श करने आते हैं, और आशीर्वाद मांगते हैं। वे कहते हैं आपकी शिक्षा का ही यह सब फल है। मुझे तो यह भी ज्ञात हुआ है कि आप उनको ब्राह्मणों की सेवा तथा वैश्य और शूद्रों से न्याय की बात भी कहते रहते हैं। हम इससे बहुत प्रसन्न हैं। हमारी इच्छा है कि आप कभी-कभी दुर्योधनादि को भी अपने शुभ विचारों से पुरस्कृत करें।"

"महाराज! मैं तो आपके परिवार का सेवक हूं। राजकुमारों को आज्ञा दे दी जाए कि वे कभी-कभी सेवक के निवास-स्थान को पवित्र कर दिया करें।"

गांधारी इस विषय में कुछ कहना चाहती थी, परन्तु उसके कहने से पूर्व ही धृतराष्ट्र ने मेरा धन्यवाद कर दिया और कभी-कभी उनसे मिलने आने को कह, उठ खड़े हुए। अर्थात् मुझको जाने का संकेत हो गया। मैंने नमस्कार की और चला आया।

धृतराष्ट्र के कहने पर भी दुर्योधन मुझसे कभी मिलने के लिए नहीं आया। मैंने धृतराष्ट्र के कहने का कि उससे मिलने आया करूं, लाभ उठाया और सप्ताह में एक बार उसके दर्शन करने उपस्थित हो जाया करता था।

इस प्रकार काल व्यतीत होता जाता था। दुर्योधनादि दिन-प्रति-दिन अधिक उच्छृंखल होते गए। इसके विपरीत युधिष्ठिरादि अधिक और अधिक लोकप्रिय बनते गए।

एक समय आया जब कुमारों की शिक्षा समाप्त हुई समझी गयी। जब द्रोणाचार्य ने महाराज धृतराष्ट्र तथा पितामह भीष्म के पास जाकर इस बात की सूचना दी तो उनकी परीक्षा के लिये रंगभूमि निर्माण करने की आज्ञा हो गई। साथ ही यह घोषणा भी हो गई कि उसी दिन एक राजकुमार को युवराज पद पर आसीन कर दिया जायेगा।

परीक्षा से एक दिन पूर्व एक युवक, जो अपना नाम कर्ण बताता था और अपने पिता का नाम नहीं जानता था, मुझसे मिलने आया। जब उसने अपने पिता का नाम नहीं बताया तो मैंने प्रश्नभरी दृष्टि से उसके मुख की ओर देखा। उसका मुख लज्जा से लाल हो गया।

मैंने कहा, "बालक! क्या पिता का नाम लेना कोई लज्जा की बात है?"

"मेरे पिता वे नहीं हैं, जिन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है और मैं अपने पिता का नाम-धाम नहीं जानता।"

"देखो बालक!" मैंने भर्त्सना के भाव में कहा, "नीतिशास्त्र में तीन पिता माने जाते हैं—शरीर निर्माता, रक्षा कर्त्ता तथा अन्न से पालन करने वाला। तीनों पिता माने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने चाहिएं।"

"आपका कथन ठीक है; परन्तु महाराज! मेरे पालन-कर्त्ता सूतजाति के हैं। परन्तु मैं अपनी नाड़ियों में क्षत्रिय रक्त का चलन पाता हूं। इसी कारण में चाहता हूं कि रंगभूमि में मैं अपना कौशल दिखाऊँ। इसी विषय में आपसे सम्मति करने आया हूं।"

मैंने गम्भीर भाव धारण कर कहा, "बालक! यह रंगमंच राजकुमारों की परीक्षा के लिए निर्माण किया जा रहा है। तुम ओजस्वी कुमार अवश्य हो, परन्तु तुम अपने को राजकुमार नहीं कह सकते। अतः तुम्हारे वहां जाने पर भी तुमको अपना कौशल दिखाने का अवसर नहीं मिलेगा। इससे तुम्हारा अपमान होगा।"

वह उस सम्मति से संतुष्ट हो गया। परन्तु दुर्योधन की उच्छृंखल सम्मति ने पुनः उसके मन के संतुलन को बिगाड़ दिया प्रतीत होता था और वह रंगभूमि में अर्जुन को चुनौती देने के लिए जा पहुंचा।

एक विशाल मैदान में भूमि समतल कर उसके पेड़-पौधों को निकाल, रंगभूमि का निर्माण किया गया। इसमें राज्य-परिषद् के सदस्यों के बैठने के लिए तो विशेष स्थान था ही, साथ ही नगर के विशिष्ट व्यक्तियों और साथ ही सेनाधिकारियों के लिए भी विशेष स्थान बनाया गया था।

मैं न तो राज्य का सेवक था, न ही नगर तथा सेना का कोई विशेष व्यक्ति था, परन्तु मुझको रंगभूमि में होने वाले प्रदर्शनों का विवरण सुनाने के लिए मंच पर बुला लिया गया। महाराज को मेरे विवरण का ढंग पसन्द था। उनको इस में रस मिलता था, अतः मेरी सेवायें मांग ली गयीं। मुझे महाराज के समीप ही, उनसे कुछ पीछे हटकर स्थान मिल गया।

राज्य-परिवार के लिए निश्चित स्थान के ऊपर महारानियों तथा राज्य-प्रासाद की अन्य प्रतिष्ठित महिलाओं के लिए स्थान बना था।

प्रतियोगिता और परीक्षा के लिए राजकुमार सबसे आगे रंग-भूमि के मध्य में खुले मैदान के किनारे पर अपना कौशल दिखाने के लिए तैयार खड़े थे।

मैंने महाराज धृतराष्ट्र को रंगभूमि का सविस्तार वृत्तान्त सुनाया। तत्पश्चात् उन महानुभावों के नाम बताए जो राजकुमारों का शस्त्रास्त्र संचालन में कौशल देखने आये हुए थे। तदनन्तर मैं उन राजकुमारों के नाम, वेशभूषा शस्त्रास्त्रों का वर्णन करने लगा।

प्रतियोगिता आरम्भ हुई तो मैं उसका वर्णन करने लगा। आरम्भ में आचार्य द्रोण ने परिवार के वृद्धजनों को सम्बोधन कर कहा, "राजन! आपके कुमार अब शस्त्र-अस्त्र विद्या में प्रवीण हो गये हैं। मैंने उनको यहां इस निमित्त एकत्रित किया है कि उनका इस विद्या में कौशल आपको देखने का अवसर मिले।"

इस प्रकार अनुमति मिलने पर परीक्षा आरम्भ हुई। सर्वप्रथम राजकुमारों ने अश्वारोहण की परीक्षा दी। अश्वों पर सवार होकर भिन्न-भिन्न प्रकार से बैठकर विभिन्न मुद्राओं तथा गतियों से सवारी कर धनुषबाण का प्रयोग करने की प्रतियोगिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई। अश्वों को वेग से दौड़ाते हुए कठिन-से-कठिन लक्ष्य को बींधना तथा दूर-से-दूर के लक्ष्य पर सफलता से बाण चलाना भी दिखाया गया।

प्रत्येक प्रकार के प्रदर्शन पर सहस्रों को संख्या में उपस्थित गण साधु-साधु कह उठते थे।

अश्वों पर सवारी में कुशलता का प्रदर्शन होने के पश्चात् रथों की सवारी में प्रवीणता दिखाई गयी। इसमें अश्वारोहण से भी अधिक कठिन और दुस्तर कार्य करके दिखाए गए। तत्पश्चात् तलवार-ढाल के करतब दिखाये गए। इसी प्रकार अग्नेय अस्त्र तथा वरुणास्त्र का प्रयोग कर दिखाया गया।

तदनन्तर दो-दो राजकुमार परस्पर नकली युद्ध कर अपना-अपना चातुर्य दिखाने लगे। इस प्रकार यह कार्यक्रम कुछ काल तक अत्यंत शांत और अद्‍भुत ढंग से चलता रहा। दर्शकगण मूर्तिवत् बैठे यह सब कार्य देखते रहे और रस लेते रहे।

यह वातावरण क्षुब्ध हो उठा जब भीम और दुर्योधन अपनी-अपनी गदा लेकर मैदान में निकले। राजकुमारों और दर्शकों में दो पक्ष हो गए। प्रत्येक पक्ष अपने-अपने प्रिय योद्धा की जय-जयकार करने लगा।

जब एक-दूसरे पर प्रहार होने लगे तो दुर्योधन के भाईयों ने उसकी सराहना करनी आरम्भ कर दी। इसके विरुद्ध प्रजा ने भीम की सराहना कर दी। इस प्रकार दर्शकों की वाह-वाह और हूं-हा ने योद्धाओं में भी उत्तेजना भर दी। इससे तो परिवार के वृद्धजनों में भय उत्पन्न हो गया। उनको दोनों में वैमनस्य की गंध आने लगी। इससे भीम को विष दिया जाना स्मरण हो आया।

इस तनाव को देख गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा दोनों के बीच खड़ा हो गया और दोनों को आशीर्वाद देकर उसने युद्ध को बन्द करा दिया। इसके पश्चात् द्रोणाचार्य का आशीर्वाद लेकर अर्जुन आगे आया और धनुर्विद्या में अपना कौशल दिखाने लगा। अर्जुन की कुशलता ने तो सबको स्तब्ध कर दिया। पूर्ण रंगभूमि में उसकी इतनी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई कि दुर्योधनादि के मुख पीले पड़ गये।

अर्जुन के कौशल पर दर्शकों ने अर्जुन पर पुष्प-वर्षा की। इसी समय रंगभूमि के द्वार की ओर से कोलाहल सुनाई देने लगा। दुर्योधन का मुख खिल उठा और वह द्वार की ओर भागता हुआ चला गया।

यह कोलाहल कर्ण के रंगभूमि में प्रवेश पाने के हठ से हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि दुर्योधन उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। इसका संकेत पाते ही वह द्वार पर जा पहुंचा। द्वारपाल कर्ण से कह रहा था, "आप सामने के द्वार से, जो जनसाधारण के लिए है, प्रवेश करें।" परन्तु कर्ण हठ कर रहा था और वह कह रहा था कि वह राजकुमारों में जाएगा।

दुर्योधन ने द्वारपाल से कर्ण को उधर से ही आने की स्वीकृति दिलवा दी। इस समय तक अर्जुन अपना कौशल दिखा चुका था। कर्ण ने वहां आते ही आगे बढ़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु द्रोणाचार्य के सम्मुख खड़े होकर कहा, "गुरुवर तथा पूज्य पितामह! मैं भी राजकुमारों के साथ कुछ समय गुरु जी से शिक्षा प्राप्त कर चुका हूं। मैं चाहता हूं कि राजकुमारों के साथ ही मुझे भी अपना कौशल दिखाने का अवसर दिया जाए।"

ऐसा प्रतीत होता था कि भीष्मादि वृद्ध-जन इस युवक के विषय में कुछ नहीं जानते थे। इस पर गुरु द्रोणाचार्य ने कर्ण का परिचय दे दिया। गुरुजी ने कहा, "यह बालक सूतवर अधिरथ का पुत्र है। यह ठीक है कि यह मुझसे धनुर्विद्या के कुछ गुर सीखता रहा है, इस पर भी मैंने इसको रंगभूमि में आने की स्वीकृति नहीं दी थी। मेरे इसे स्वीकृति न देने का कारण यह है कि आज राजकुमारों की शिक्षा परीक्षा, का दिन है और यह राजकुमार नहीं है। मैं इसको आज की प्रतियोगिता में भाग लेने की स्वीकृति नहीं दे सकता।"

इस पर दुर्योधन ने आगे बढ़कर कहा, "मेरा निवेदन है कि यह गुरुजी का शिष्य होने से हमारा गुरु-भाई है, अतः यह अर्जुन से प्रतियोगिता में भाग लेने का अधिकारी है।"

दुर्योधन और भीम में द्वेष तो था ही। अतः भीम बोल उठा, "यह सूतपुत्र यदि अपना शौर्य दिखाना चाहता है तो किसी अन्य स्थान पर जा सकता है। इस सभा में राजकुमारों से प्रतियोगिता करने की इसको स्वीकृति नहीं मिलनी चाहिए।"

दुर्योधन ने भीम की बात का खंडन करने की घोषणा कर दी, "मैं गुरु-भाई कर्ण को राजा के पद से सुशोभित करने के लिए अभी इसको अंगदेश का राजा बनाता हूं और इसका अभी राज्याभिषेक करता हूं देखते-ही-देखते कर्ण का दुर्योधन ने अभिषेक भी कर दिया। इसके पश्चात् कर्ण अर्जुन को ललकारता हुआ रंगभूमी में जा खड़ा हुआ।

दर्शकों में पुनः दो पक्ष हो गए। कुछ कर्ण की प्रशंसा करते थे और दूसरे अर्जुन की। दुर्योधन और उसके सब भाई कर्ण का पृष्ठ-पोषण करने लगे थे। पांडव, द्रोण और कृपाचार्य अर्जुन का पक्ष ले रहे थे। भीम इस पक्ष वालों में सबसे आगे था।

इस समय कर्ण का पिता अधिरथ कर्ण के जीवन को संकट में सुन रंगभूमी में आ गया। वह, बेटा कर्ण! बेटा कर्ण!! कहकर पुकार रहा था। कर्ण ने आगे बढ़ अपने पिता के चरण स्पर्श किये और रंग भूमी में अपना कौशल दिखाने लग गया। यह सब वृतांत मैं और विदुर जी धृतराष्ट्र को बता रहे थे। एकाएक धृतराष्ट्र ने विदुरजी से पूछ लिया कर्ण का अभिषेक किसने किया है? दुर्योधन ने?

तो मैं क्या मर गया हूं? वह न तो राजा है न ही युवराज है वह भला कैसे किसी देश का राज्य किसी को दे सकता है?''

मैने महाराज के उद्विग्न मन को शान्त करने के लिए कह दिया महाराज यह बच्चों का खेल है आपको क्रोध करने की आवश्यकता नहीं।''

इस पर विदुर जी ने कहा, "महाराज यह बात विग्रह का बीजा-रोपण मानिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब अनाधिकारी राजा बन राज्य करने लगे तो राज्य कुल और देश का विनाश अवश्यम्भावी है।''

इस पर धृतराष्ट्र ने कहा, ''कर्ण को रंगभूमी से निकाल दो।'' परन्तु कर्ण अपना कौशल दिखाता रहा। भीष्म इत्यादि को समझ नहीं आया कि क्या किया जाए? बात द्रोणाचार्य ने बना ली। उसने सूर्यास्त होने पर प्रदर्शन बन्द करने की घोषणा कर दी। कर्ण ने अपना कौशल तो दिखाया और बहुत-से लोगों ने उसकी प्रशंसा भी की, परन्तु उसकी अर्जुन से युद्ध की लालसा पूरी न हो सकी।

:13:

एक दिन विदुर के गृह पर युधिष्ठिरादि पांडवो से मेल हुआ, तो युधिष्ठिर ने नमस्कार कर कहा, ''तात। गुरुजी ने हमसे हमारी शिक्षा समाप्त होने पर गुरु-दक्षिणा मांगी है।''

"क्या दक्षिणा मांगी है?''

"वे चाहते हैं कि हम महाराज द्रुपद को बन्दी बनाकर उनके सामने उपस्थित कर दें।''

''क्यों?''

''उन्होंने अपने बाल्यकाल की कथा बताई है। जब वे अपने पिता महर्षि भारद्वाज के आश्रम में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, उस समय द्रुपद भी वहां शिक्षा पाता था। द्रुपद और द्रोणजी में गहरी मित्रता थी दोनों इकट्ठे पढ़ते खेलते और खाते पीते थे।

"पिता की मृत्यु पर द्रुपद उत्तर पांचाल देश का राज्य पा घर लौट आया। द्रोण जी आश्रम में ही रहे। वहां पर शरद्वान की पुत्री कृपी से उनका विवाह हुआ और उनके सन्तान हो गयी।

"महर्षि भारद्वाज की मृत्यु के पश्चात्, उस आश्रम की प्रतिष्ठा कम होने लगी और गुरुजी का जीवन-यापन कठिन हो गया। उस समय उनको अपने मित्र द्रुपद का विचार आया और वे उसको मिलने चल पड़े।

"गुरुजी ने राजा द्रुपद को अपने बाल्यकाल की बातें स्मरण कराईं, परन्तु राजा द्रुपद को वे सब भली नहीं लगीं। उसने द्रोणजी को अपना सखा मानने से भी इन्कार कर दिया। राजा ने नीति की एक उक्ति सुना दी कि निर्धन का धनवान, मूर्ख का विद्वान् और कायर का शूरवीरं मित्र नहीं हो सकता।

"गुरुजी ने उसी समय प्रण किया था कि वे विद्वान् तो हैं ही, अतः अपने शिष्यों के बल पर धनवान और शूरवीर भी बन जायेंगे। इसी निमित्त उन्होंने हमारा गुरुपद स्वीकार किया था। अतः इन्हीं दो अभावों की पूर्ति करने के लिए उन्होंने गुरु-दक्षिणा मांगी है।"

विदुरजी इस योजना को सुन विस्मय में मुख देखते रह गए। मुझको विस्मय नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। मैं द्रोण जी की इस भावना को उनमें क्षात्र प्रवृत्ति अनुरूप ही समझता था। मैं यह मानता था, कि द्रुपद का द्रोण के प्रति तिरस्कार का भाव न केवल मूर्खतापूर्ण था, प्रत्युत मानवता का हनन करने वाला भी था। उस बाल्यकाल की मित्रता की बातें छोड़ भी दी जायें, तो भी क्षत्रियों का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वे अपने देश में विद्वान्, योग्य कुशल ब्राह्मण को आश्रय दें। द्रुपद थोड़ी-सी भूमि प्राप्त कर अपने को सर्वगुण सम्पन्न मानने लगा था। मैंने युधिष्ठिर से कहा, "यह गुरु-दक्षिणा तो पूर्ण करनी ही पड़ेगी।"

"हो जाएगी तात्!"

"परन्तु सुना है कि द्रुपद एक शूरवीर राजा है।"

"तो तात्! हम क्या किसी से कम है?"

"तुम्हारे शौर्यवान और पराक्रमी होने पर तो संदेह नहीं। कितनी सेना को साथ ले जा रहे हो?"

"हम एक सौ छः राजकुमार ही जा रहे हैं। हमारी इच्छा नहीं कि यह युद्ध दो राज्यों में छिड़ जाए। यह तो हम राजकुमारों और गुरुजी के विश्वासघाती मित्र में परस्पर की बात है।"

"क्या यह राज्यों से पृथक् की बात रह सकेगी?"

"हमारी ओर से यही यत्न प्रयत्न किया जा रहा है।"

मैंने आशीर्वाद दिया तो पांडवों ने चरण-स्पर्श कर कहा, "तात्! हम निस्सन्देह सफल होंगे।"

इस भेंट के दो सप्ताह पश्चात्, मैं धृतराष्ट्र के पास बैठा था कि उत्तर पांचाल से एक दूत राजकुमार के उस देश पर आक्रमण की कथा सुनाने आ पहुंचा।

उसने बताया, "बिना सूचना के कौरवों ने नगरी में लूट मचा दी। उस समय पांडव साथ नहीं थे। दुर्योधन ने अपने भाइयों सहित ही पूर्ण सफलता का श्रेय लेने के लिए पांडवों को कह दिया था कि यदि वे अपने कार्य में सफल न हुए तब वे आगे आ सकते हैं। इस पर युधिष्ठिर ने भाइयों सहित समर से पृथक् रहने का निश्चय कर लिया।

"कौरवों के इस प्रकार ऊधम मचाने पर महाराज द्रुपद ने अकेले ही सब भाइयों को घायल कर नगर से बाहर भगा दिया।

"कौरवों को पराजित देख पांडवों ने गुरुजी से आज्ञा मांगी और द्रुपद से लड़ने के लिए चल पड़े। पहले तो द्रुपद ने अकेले ही पांडवों का विरोध करना चाहा, परन्तु जब ये आगे ही बढ़ते रहे तो नगर में उपस्थित सैनिकों को बुला लिया गया। इस पर घोर युद्ध के पश्चात् द्रुपद बन्दी बना लिया गया। यह कार्य अर्जुन ने किया। वह राजा को रस्से से बांध गुरुजी के पास ले आया।

"महाराज! द्रुपद गुरु द्रोणाचार्य को देख अति लज्जित हुआ और अपने कटु वचनों को, जिनसे गुरुजी का तिरस्कार किया था, स्मरण कर अति दीन-भाव में हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोड़कर उसने उनसे क्षमा मांग ली।

"गुरुजी ने उदारतापूर्वक उत्तरी पांचाल राज्य का आधा भाग स्वयं लेकर और आधा पुनः उसको वापस देकर कहा, "अब मैं तुम्हारे समान राजा बन गया हूं। अब तो तुम्हारा मित्र हो सकता हूं?"

पाँडव राजकुमारों की इस विजय से पूर्ण परिवार में प्रसन्नता भर गई। अब यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि किसी राजकुमार को युवराज पर सुशोभित करना चाहिए, जिससे वह राज्यकार्य का अनुभव प्राप्त कर सके।

युधिष्ठिर की राज्यवासियों में महिमा देख और उसके सद्गुणों के कारण, उसको युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया गया। परिवार के सब प्राणी इससे प्रसन्न थे। केवल दुर्योधन और उसके भाई इस कार्य से रुष्ट थे। उन दिनों शकुनि गांधार में था। इस कारण दुर्योधन आदि का रूठना प्रभावहीन रहा।

:14:

शकुनि गांधार से स्वयं आया अथवा उसको दुर्योधन ने बुलाया, कहा नहीं जा सकता। इतना पता चला कि उसके आते ही गुप्त मंत्रणायें होने लगीं। एक विशेष बात यह हुई कि नीति-विशारद पंड़ित कणिक भी इन मन्त्रणाओं में सम्मिलित होने लगा।

एक सेवक जो दुर्योधन को मद्य पिलाया करता था, विदुरजी का भक्त बन चुका था। वह कभी-कभी उनसे उपदेश सुनने के लिए आया करता था। एक दिन वह लोक-परलोक के विषय में अनेकानेक प्रश्न पूछ रहा था कि मैं वहां जा पहुंचा। उस सेवक का नाम आनन्द था।

आनन्द ने पूछा था, "महात्माजी! जब कर्त्तव्य और धर्म में विरोध हो तो क्या किया जाये?"

मैं इस प्रश्न को सुन सतर्क हो गया। मेरे मन में विचार उठा कि इस बेचारे के मन में कर्त्तव्य के विषय में सन्देह उत्पन्न हो गया है। अवश्य कोई विशेष बात हुई है। विदुरजी ने कह दिया, "कर्त्तव्य धर्म के विपरीत नहीं हो सकता। जहां हो, वह अकर्त्तव्य हो जाता है।"

इस पर आनन्द ने एक पहेली हमारे सम्मुख रख दी। उसने कहा, "स्वामी की सेवा और मानव-हत्या को रोकना, कौन करने योग्य कार्य है?"

"हत्या तो एक कर्म है। यह पुण्य भी हो सकता है और पाप भी। दुष्ट की हत्या पुण्य है। धर्मात्मा की हत्या पाप कर्म होगा। जब देखना यह चाहिए कि स्वामी की सेवा किस प्रकार की हत्या को रोकने में बाधक है?"

"क्या सेवा का कार्य छोड़ देना चाहिये?"

"सेवा-कार्य छोड़ देने से हत्या रुक जायेगी क्या?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तब रुक सकती है जब मैं स्वामी-द्रोह करूं।"

विदुरजी ने कह दिया, "तुम सेवा-कार्य छोड़ दो।"

मैं इस पक्ष में नहीं था। परन्तु आनन्द को विदुरजी की योजना पसन्द आई और उसने कह दिया, "महात्मा जी! सेवा-कार्य छोड़कर क्या करूं? मेरे सात छोटे-छोटे बच्चे हैं। उनका पालन-पोषण कैसे होगा?"

अब पुनः वार्तालाप का सूत्र अपने हाथ में लेकर मैं कहने लगा, "आनन्द! यह विकट समस्या है, परन्तु मैं एक मार्ग बता सकता हूं, यदि तुम कर सको तो। इससे जहां धर्म-परायणता में त्रुटि नहीं पड़ेगी वहां कर्त्तव्य का पालन भी हो जायेगा।"

"तो बताइये महाराज! मैं करने को तैयार हूं।"

"तुम इसी समय किसी अन्य व्यक्ति की सेवा स्वीकार कर लो। मैं उसको जानता हूं, वह सर्वथा धर्मपरायण और व्यवहार का शुद्ध है। वह तुमको इससे अधिक वेतन देगा जो तुम यहां पाते हो। साथ ही यदि हत्या रोकने में सहायता करोगे तो पुरस्कार भी देगा। इतना ही नहीं, प्रत्युत किसी कठिनाई के समय तुम्हारी और तुम्हारे परिवार की रक्षा की सामर्थ्य भी वह रखता है।"

"कौन है महाराज! वह?"

"वह अपना नाम नहीं बतायेगा। हाँ, उसके विश्वस्त होने का आश्वासन मैं दे सकता हूं।"

"क्या काम करना होगा?"

"वर्तमान सेवा में लगे रहना। वहां की सब बातें, जो हत्या के सम्बन्ध की हों, इस नवीन स्वामी को बताते रहना; दुर्योधन से प्राप्त वेतन उसको देना, जिससे तुम आज से वेतन पाने लगोगे। इससे स्वामी की सेवा में त्रुटि नहीं आयेगी। तुम जिससे वेतन पाओगे। उसके रहस्य के संरक्षक हो जाओगे। अपने वर्तमान स्वामी का वेतन तुम न छूओगे न उसके सेवक तुम रहोगे।"

"यदि मुझको किसी प्रकार के संदेह में पकड़ लिया गया तो?"

"तुम तो अपने स्वामी को जानते नहीं। तुम कुछ बता नहीं सकोगे, परन्तु वह तुम्हारे विषय में सब कुछ जानता होगा और वह इतना शक्तिशाली है कि तुम को जलती आग में से भी निकालने की सामर्थ्य रखता है।"

"उसके इतने शक्तिशाली होने का विश्वास कैसे हो?"

"कितना वेतन तुम पाते हो?"

"दस स्वर्ण प्रतिमास।"

"तो एक वर्ष का एक सौ बीस स्वर्ण और पांच सौ स्वर्ण बंधक के रूप में तुम्हारे परिवार के पास रहेगा।"

आनन्द प्रलोभन में फंस गया। उसने कहा, "यदि मेरे परिवार की रक्षा हो सके तो मैं अभी से कार्य करने को उद्यत हूं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो ऐसा करो। आज सांयकाल दीपक जलने से कुछ पूर्व मेरे निवासगृह पर आ जाना। मैं उस मोदी से सब बात कर छोड़ूंगा। अग्रिम स्वर्ण मुझसे ले जाना। साथ ही अन्य आश्वासन भी उससे राय कर बता दूंगा।"

उसी सांयकाल आनन्द आया तो मैंने उसको पांच सौ स्वर्ण एक डेढ़ सौ स्वर्ण एक और एक दर्शनी हुण्डी पांच सौ स्वर्ण की दे दी मैंने उसको बता दिया—"यदि तुम अपने को किसी भी कठिनाई में पाओ तो इस हुण्डी के पीछे मुझसे हस्ताक्षर करवा कर पांच सौ स्वर्ण प्राप्त कर सकोगे।"

इस पर उसने बताया, "अभी तो मैं इतना ही जान पाया हूं कि राजकुमार युधिष्ठिर तथा उनके भाइयों की हत्या का षड्यन्त्र हो रहा है। इस हत्या में कणिक षड्यन्त्रकारी है। कुमार शकुनि ने वचन दिया है कि उसकी योजना सफल होने पर उसको कौरवों के राज्य का महामात्य नियुक्त कर दिया जायेगा, जिससे उसका दस सहस्र स्वर्ण त्रैमासिक वेतन होगा।"

मैंने आनन्द को बताया कि मैं नित्य सांयकाल यहां मिला करूंगा उसको यहां आकर शेष विवरण बताना चाहिए।

:15:

विदुरजी को आनन्द के नवीन स्वामी की भक्ति में स्थिरता पर संदेह था, परन्तु मैंने निश्चय कर लिया था। मैंने इन्द्र को सूचना भी भेज दी थी कि मैंने यह प्रबन्ध किया है। इस पर इन्द्र ने मेरे कार्य की सराहना की और कहला भेजा कि किसी भी कठिनाई के समय उनको स्मरण करूं तो वह सहायता भेज देगा।

दूसरी ओर षड्यन्त्र पनपने लगा था। एक दिन मैं विदुरजी से धर्मचर्चा कर घर लौटा तो आनन्द बैठा मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने बताया, "भगवन् एक आवश्यक सूचना देने के लिए आया हूं।

"कल कणिकजी आए थे और दुर्योधन, शकुनि और दुःशासन को कह गए हैं कि महाराज धृतराष्ट्र को मनाया जाये कि पाँडवों को वारणावत में भेजा जाए। वे उस नगर को राजधानी बनाकर अपना राज्य-संचालन करें।

"भगवन्! केवल यही नहीं। दुःशासन के मुख से यह भी निकल गया कि यदि महाराज ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तो फिर पांचों पांडवों और उनकी माता की अस्थियां भी ढूंढ़ने पर नहीं मिलेंगी।"

"क्या अभिप्राय है इसका?"

"भगवन्! आगे दुःशासन कुछ कहने वाला था, परन्तु अमात्य ने उसको कहते-कहते रोक लिया। साथ ही वह अर्थ-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखने लगा। मैं बाहर चला आया तो ये परस्पर धीरे-धीरे बातें करते रहे, जो मैं सुन नहीं सका।"

"देखो आनन्द! तुम्हारा कार्य अब आरम्भ हो रहा है। तुमको यह जानने का यत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिए कि वारणावत में वे क्या करने वाले हैं।"

आनन्द की इस सूचना पर मैं चिन्ता अनुभव करने लगा था। मैं दुःशासन के कथन का अर्थ तो समझा था, परन्तु उस लक्ष्य की प्राप्ति में क्या ढंग प्रयोग किया जाएगा, यह जानने के लिए उत्सुक था।

अगले दिन धृतराष्ट्र जी से मिलने गया तो वारणावत सम्बन्धी सूचना का समर्थन मिल गया। धृतराष्ट्र ने बताया, "संजयजी! मैंने यह निर्णय दे दिया है कि गृहकलह का सदा के लिए निवारण कर दूं। मैंने पांडवों को पृथक् और अभी से स्वतन्त्र राज्य देने का निश्चय कर लिया है। वे जब हस्तिनापुर में आये थे, तो यही निश्चय किया गया था कि उनको पृथक् राज्य दिया जाएगा।"

मैंने केवल यह पूछा, "युधिष्ठिर इस बात को मान गया है क्या?"

"बात यह है कि उसको युवराज बनाते समय हमें दुर्योधन को दिये इस वचन का स्मरण ही नहीं रहा था। जब शकुनि ने बताया तो हमें स्मरण हो आया। अतः पांडव और उनकी माता वारणावत में जाकर रहेंगी। वह नगर उनको दे दिया गया है। उस ओर का कौरव राज्य उनका होगा। आगे उनकी अपनी योग्यता पर निर्भर करता है। दुर्योधन हस्तिनापुर में राज्य करेगा।

"हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ, जब युधिष्ठिर ने हमारी आज्ञा का पालन करना स्वीकार कर लिया।

"अब उनके लिए वारणावत में एक विशाल गृह बनवाया जायेगा। यहां से योग्य गृह-निर्माण-कला जानने वालों को वहां भेजने का विचार है। तब तक के लिए वे वहां एक भाड़े के भवन में रहेंगे।"

इस सूचना को सुन मैं चुप रहा। मुझे चुप देख धृतराष्ट्र ने मुझसे पूछ लिया, "संजय जी! आपने कुछ सम्मति प्रकट नहीं की?"

"महाराज!" मैंने कह दिया—"मैं आपके हृदय की स्वच्छता की सराहना किए बिना नहीं रह सकता। आपका उद्देश्य सर्वथा शुद्ध और शान्ति के ही निमित्त है।

"युधिष्ठिर का युवराज नियुक्त किये जाने के पश्चात् हस्तिनापुर से बाहर जाना स्वीकार कर लेना, युधिष्ठिर की उदारता और शान्तिप्रियता का सूचक है। परन्तु महाराज! यह सब शुभकामना तो तभी फलीभूत होगी, जब दुर्योधन इस सब वैभव को प्राप्त कर सन्तोष और प्रसन्नता अनुभव करेगा; युधिष्ठिर से द्वेष छोड़, भाइयों का-सा व्यवहार करेगा।"

"वह कहता है कि अब वह उससे बहुत ही अच्छा और प्रेमपूर्ण व्यवहार रखेगा।"

"इससे कौरव वंश और कौरव राज्य का कल्याण होगा।"

मुझे विस्मय इस बात पर हुआ था कि पांडव, जो बहुत ही साधारण-सी बातों में विदुरजी और मेरी सम्मति लेने आया करते थे, इस विपुल परिवर्तन के विषय में सम्मति लेना तो दूर, सूचना देने भी नहीं आए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन आनन्द आया तो उसने सूचना दी कि उज्जयिनी का एक अभियंता, गृह निर्माण करेगा जिसमें पांडव निवास करेंगे।

अब षड्यन्त्र स्पष्ट हो गया था। उस गृह में पांडवों की हत्या का आयोजन किया जाना था। किस ढंग से, यही जानना शेष था। यह भी सम्भव था कि उस भवन को आग लगाकर उनको जीवित जला दिया जाये और जब पांडव जीवित नहीं होगे तो न रहेगा बांस, न बजेगी बांसूरी। लोक-निन्दा तो सामयिक होती है। कुछ ही समय बाद लोग अन्याय को भूल जाते हैं।

इस पर भी हम सचेत थे और और चाहते थे कि युधिष्ठिर इत्यादि को भी सचेत कर दिया जाये। अतः एक दिन मैं युधिष्ठिर के आगार में जा पहुंचा। युधिष्ठिर ने मेरे चरण स्पर्श किये। मैंने उसे आशीर्वाद दिया तो उसने कहा, "तात! हम अगले सप्ताह वारणावत जा रहे हैं।"

मैंने कहा, "परन्तु आपके रहने योग्य भवन तो अभी निर्मित नहीं हुआ।"

"हम अभी एक भाड़े के भवन में रहेंगे। जब भवन तैयार हो जाएगा तो हम चले जायेंगे।"

"युधिष्ठिर! अब तुम कभी विदुरजी से मिलने नहीं आते। वे तुमको स्मरण करते रहते हैं।"

"हमको बताया गया है कि महात्मा जी हमारे वारणावत जाने के लिए तैयार होने पर रुष्ट है। यूं तो माताजी भी इस पर प्रसन्न नहीं हैं, परन्तु भाइयों में द्वेष कम करने का यही एक उपाय है।"

"युवराज! यह तुमको किसी ने असत्य कहा है कि महात्मा विदुर तुमसे रुष्ट है?"

"तब तो हम अवश्य मिलने आएंगे।"

वारणावत जाने से पूर्व युधिष्ठिर इत्यादि पांचों पांडव विदुर जी के निवास स्थान पर आये और जाने से पूर्व उनसे आशीर्वाद मांगने लगे। उस समय मैं भी वहीं बैठा था।

विदुरजी ने सबको बैठाया और कहने लगे, "देखो बेटा! अब तुम स्वतन्त्र राज्य का भोग करने जा रहे हो। इस कारण यदि नीति की एक- दो बातें तुमको बता दूं तो अनुचित न होगा।

"सुनो! जब तक सैनिकों की परीक्षा न कर लो, उन पर विश्वास नहीं करना।

"जब तक निश्चय न हो जाए कि अमुक शत्रु है, तब तक उससे मीठा बोलें और हँसकर बात करें। उस पर विश्वास करने का बहाना करें।

"जब निश्चय हो जाए कि अमुक शत्रु है, तब उससे मीठा बोलने और विश्वास करने का बहाना करने में और भी अधिक दिखावा करें, परन्तु भीतर से उतना ही अधिक संयत और सतर्क रहें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पूर्ण विश्वास तो परीक्षा हो जाने पर, मित्र सिद्ध होने पर ही करें।

"शत्रु के हाथ एक लोहे से भी तीक्ष्ण परन्तु लोहे से न बना हुआ शस्त्र होता है। उस शस्त्र को जानने वाला और उससे बचने का उपाय करने वाला व्यक्ति शत्रु से मारा नहीं जा सकता।

"शत्रु की योजना को समझकर उससे बचने वाला ही नीतिमान कहलाता है।

"सूखे वन में आग लग जाने पर चूहे बिलों में घुस जाते हैं और वे चूहे उस दावानल से बच सकते हैं जिनके बिलों के दूसरे द्वार वन से बाहर होते हैं।

"जैसे अन्धे को मार्ग दिखाई नहीं देता, वैसे ही धैर्यविहीन व्यक्ति को सद्‌बुद्धि प्राप्त नहीं होती।"

युधिष्ठिर अवाक् बैठा रहा। वह इस उपदेश का सिर-पैर नहीं समझा। इस पर भी वह चुप था। मैंने बात को कुछ सीमा तक स्पष्ट करने के लिए कह दिया, "हम दोनों हस्तिनापुर में, अपने कर्मों के अधीन, बंधे हुए बैठे हैं। इसको छोड़ नहीं सकते। इस पर भी हम समय-समय पर अपने दूत भेजा करेंगे जो आपको उक्त नीति की व्याख्या बताया करेंगे।"

मेरे इतना कहते-कहते विदुर जी उठ खड़े हुए। राजकुमारों ने चरणवन्दना की, हमने आशीर्वाद दिया और वे विदा हो गए। उनके चले जाने पर विदुरजी ने बताया, "मैं इन मूर्ख राजकुमारों को इससे अधिक बात अभी नहीं बता सका। समय पर बताऊँगा। इस पर भी मैंने जो कुछ भी कहा है, उस पर ये विचार करेंगे तो निश्चय ही हमारा आशय समझ सकेंगे।"

:16:

वारणावत में पांडवों का भव्य स्वागत हुआ। वहां उनके रहने के लिए नागरिकों ने ही एक विशाल भवन का प्रबन्ध कर दिया था। पांडव वहां के लोगों से मेल-जोल रख, उनके दुःख-दर्द में सम्मिलित हो और उनकी सब प्रकार से रक्षा और सहायता कर दिन-प्रतिदिन उनमें सर्वप्रिय होते गए।

हस्तिनापुर से दुर्योधन का एक विश्वस्त कर्मचारी पुरोचन, भवननिर्माण का निरीक्षण कर रहा था। भवन में लगने वाली प्रत्येक वस्तु हस्तिनापुर से जा रही थी। वारणावत वालों को कुछ पता नहीं चलता था कि यह भवन कैसा, किन पदार्थों से और कितने आगारों का बन रहा है।

भवन अति विशाल, सुन्दर और सुदृढ़ बनाया जा रहा था। इसकों देखने के लिए पांडव और उनकी माता कुन्ती कभी-कभी जाते थे और भवन की सुन्दरता को देखकर प्रसन्नता और सन्तोष अनुभव करते थे।

भवन तैयार हुआ और पांडव वहां जाकर रहने लगे। जिस दिन पांडवों ने उस भवन में प्रवेश किया, उसी दिन एक सुरंग खोदने वाला कुशल खणिक पांडवों के सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित हो बोला, "महाराज! मुझे विदुरजी ने आपके पास भेजा है।"

"क्या कार्य है?"

"वह मैं केवल आपको ही बताना चाहता हूं। आप पांचों भाई तथा माता जी पृथक् में सुनने की कृपा करें, तो विदुरजी का सन्देश दे सकता हूं।"

वैसा ही किया गया। एकान्त में खणिक ने कहा, "महाराज विदुरजी का कहा है कि नाम भ्रम में डालने वाले होते हैं। परिचय के लिए मैं विदुरजी के कुछ वाक्य आपके सम्मुख कहता हूं। एक समय उन्होंने आपको पृथक् में बिठाकर कहा था, "सूखे वन में आग लग जाने पर चूहे बिलों में घुस जाते हैं और वे चूहे ही उस दावानल से बच सकते हैं, जिनके बिलों के दूसरे द्वार बन के बाहर होते हैं।"

यधिष्ठिर ने कह दिया, "ठीक है। समझ गए कि तुम उनके विश्वस्त कर्मचारी हो।"

इस पर खणिक ने बताया, "यह भवन, सूखे वन की भांति, जल जाने योग्य वस्तुओं से बना है। मुझको इस भवन के सबसे भीतर के आगार में से बिल खोदने के लिए विदुरजी ने भेजा है।

"महात्मा जी का यह भी कहना है कि बिल के दूसरे द्वार के पार आपकी रक्षार्थ नौका खड़ी रहेगी, जिस पर कोई नाविक न होगा।

आप उस नौका को लेकर गंगा पार जाइये और तब तक अज्ञातवास करिए, जब तक वे आपको प्रकट होने की सूचना ना भेजें। उनका कहना है, भगवान् आपका कल्याण करेंगे।"

युधिष्ठिर और पांडव अपने को इस प्रकार उस विशाल भवन में जिसमें सैकड़ों आगार थे और जिससे निकल सकना असम्भव था, घिर गया अनुभव करने लगे।

उन्होंने विदुरजी के कथनानुसार सुरंग खुदवा ली और जिस दिन यह समाप्त हुई, उसी दिन खणिक ने उनको गंगा के निर्जन तट पर एक नौका खड़ी दिखा दी। साथ ही यह कह दिया, "हाथ में आया अवसर खो देना बुद्धिमानों का काम नहीं।"

इतना कह वह खणिक विदा हो हस्तिनापुर पहुंच गया। उसने वहां पहुंचते ही अपने कार्य को पूर्ण करने की सूचना हमें दे दी।

खणिक के हस्तिनापुर पहुंच कार्य सम्पन्न करने की सूचना पहुंचाने के अगले दिन ही हस्तिनापुर में यह समाचार मिला कि वारणावत में नवीन भवन में आग लग गयी है और पांचों पांडव माता कुन्ती सहित उसमें जलकर भस्म हो गए हैं यह भी समाचार मिला कि अगले दिन उस भवन की राख में से पांच युवकों और एक स्त्री की अस्थियां मिली हैं।

यह समाचार जिस समय महाराज को मिला, उसी समय एक गुप्तचर, जो मैंने गंगा के तट पर नाव के समीप छुपा रखा था, हमको बता रहा था कि पांडव और कुन्ती सुरंग से निकल नौका में सवार हो गंगा पार चले गए हैं। वहां वे वन में प्रवेश कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलुप्त हो गए हैं।

वारणावत में आग लगने के समाचार से हस्तिनापुर में चारों ओर शोक व्याप्त हो गया। राजप्रासाद में स्त्रियों के रोने से हाहाकार मच गया। वारणावत के अधिकारियों का पत्र आया। इसमें उन्होंने पूर्ण वृत्तान्त लिखा। उनके लिखने से यह स्पष्ट था कि वहां के लोगों को यह विश्वास हो गया है कि यह भवन लाख तथा राल इत्यादि आग्नेय पदार्थों से जान-बूझकर बनाया गया था और आग भी जान-बूझकर लगाई गयी थी। वारणावत के लोगों ने लिखा था कि पूर्ण नगर में राल और लाख के जलने की गन्ध भर गई थी। उनका विचार था कि पुरोचन ने आग लगाई है और वह भी जलकर भस्म हो गया है।

धृतराष्ट्र और भीष्म भी आंखों में आंसू बहाते हुए विलाप करने लगे। तेरह दिन तक पांडवों की मृत्यु का शोक मनाया गया। तत्पश्चात् उनका क्रिया-क्रम सम्पन्न हुआ।

एक दिन मैं और विदुर जी, भीष्म जी से मिलने गये तो भीष्म जी कहने लगे, "हमें विश्वास नहीं आता कि युधिष्ठिर जैसा धर्मात्मा, भीम और अर्जुन जैसे बलशाली आग में जलकर भस्म हो गये हैं।"

विदुर जी ने कहा, "भगवन्! शकुनि और दुर्योधन ने पांडवों की हत्या का षड्यन्त्र किया है।"

इस पर भीष्म जी ने क्रोध में कह दिया, "यदि दुर्योधन का हाथ इसमें है तो मैं उसे भी राज्य भोगने नहीं दूंगा।"

"आप इस विषय में जांच करिये।"

भीष्म जी ने जांच करने का यत्न किया, परन्तु एकाएक यह जांच समाप्त हो गई। मेरा अनुमान था कि भीष्म जी को सच्चाई का ज्ञान हो गया होगा तो वह चुप कर गये होगें।

:17:

समय पाकर सब लोग पांडवों को भूल गये और राज्यप्रासाद में पहिले की तरह रंगरेलियां मनाई जाने लगीं। हमने कई गुप्तचर भेजे पांडवों का पता करने के लिए, परन्तु उनकी कोई सूचना नहीं मिली। इस प्रकार वारणावत की घटना को एक वर्ष से ऊपर हो गया।

इस समय कृष्ण द्वैपायन व्यासजी हस्तिनापुर में आये तो सीधे विदुरजी के घर पर पधारे।

जब विदुर जी ने बताया कि पांडवों की सहायता के लिए मैंने सहस्रों स्वर्ण व्यय किए हैं तो मुझे भी उन्होंने अपने समीप बुला लिया। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महर्षि व्यास जी पांडवों की रक्षा में भाग-दौड़ कर रहे हैं। जब उनको यह सूचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिली कि वे वन में विलुप्त हो गये हैं तो वे स्वयं उनकी खोज में निकल पड़े। वे वन में उनसे मिले तो उन्होंने उनको एकचक्रा नगरी के एक शिष्ठ ब्राह्मण परिवार में ठहरा दिया था। वहां भिक्षा-वृत्ति कर वे जीवन चला रहे हैं। मैंने पूछ लिया, "अब तो उनको वारणावत से गये एक वर्ष से ऊपर हो गया है। वे उस नगरी में कैसे पहुंच गये?"

इस पर व्यास जी ने उनकी कथा बता दी। उन्होंने बताया, "वे गंगा पार कर अपनी नौका में आग लगा तथा बहाकर जंगल में घुस गये। विदुरजी ने उनको यह कहला भेजा था कि उन्होंने तब तक गुप्तवास करना है जब तक हस्तिनापुर की स्थिति सुधर नहीं जाती। अतएव उन्होंने गांवों तथा नगरों में जाना उचित नहीं समझा। वे जंगलों में भ्रमण करने लगे। जंगल में फल-फूल तथा मृगया से प्राप्त जन्तुओं के मांस खाकर वे विचरते रहे।

"एक दिन कुन्ती और चारों भाई यात्रा से थके हुए गाढ़ निद्रा में सो रहे थे और भीम उनकी, जंगली जानवरों से रक्षा कर रहा था कि हिडिम्ब राक्षस और उसकी बहिन हिडिम्बा की दृष्टि उन पर पड़ गयी। ये भाई-बहन नर-मांस-भक्षी थे। उनकी इच्छा हुई कि उनकी हत्या कर उनके मांस का भोजन करें। इसलिए हिडिम्ब से भीम का युद्ध हो गया।

"हिडिम्ब सात हाथ ऊँचा एक विशालकाय राक्षस था। इस पर भी भीम ने उसको भूमि पर चित कर उसका गला घोंट कर मार डाला।

"हिडिम्बा दोनों में युद्ध देख रही थी। वह भीम के शरीर का गठन और उसके शौर्य को देखकर उस पर मोहित हो गयी। हिडिम्ब की मृत्यु के पश्चात् हिडिम्बा भीम से विवाह की याचना करने लगी। उसने अनुनय-विनय से कुन्ती को मना लिया और कुन्ती ने उसको एक पुत्र उत्पन्न करने की स्वीकृति दे दी।

"अतः भीम और उसकी माता तथा भाइयों ने शालीक्षेत्र में मुनि के सरोवर के किनारे निवास कर लिया। वे दस मास वहां रहे। जब हिडिम्बा के पुत्र हुआ तो कुन्ती ने हिडिम्बा को आशीर्वाद दे उसके पुत्र का नाम घटोत्कच रख दिया। वे राक्षसी को वहाँ छोड़ पुनः भ्रमण को चल पड़े।

"मेरी उनसे भेंट वन में ही हुई थी। मैंने उनको पहिचाना और वारणावत की पूर्ण कथा जान उनको एकचक्रा नगरी ले गया। मैं वहां उनको एक भद्र ब्राह्मण के घर पर रख आया हूं। अब तुम यहां का समाचार उनको भेज सकोगे।"

एक दिन धृतराष्ट्र जी का प्रतिहार मुझे बुलाने आ पहुंचा। इस बुलाने का कारण न समझ मैं महाराज तथा महारानी के सम्मुख उपस्थित हो गया। मैं आशीर्वाद देकर पूछ लिया, "महाराज! आपने मुझे स्मरण किया है, यह मेरा अहोभाग्य है।"

"आप आ गए, बहुत अच्छा हुआ है। हम आपको राजकार्य से राजकुमारों के साथ भेजना चाहते हैं। पांडु की पत्नी कुन्ती के स्वयंवर पर पांडु के साथ आपको भेजा था और आप पांडु का विवाह सम्पन्न कर लौटे थे। अब हम आपको दुर्योधन के साथ भेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि आप घर में बहू लेकर ही आएंगे।

"राजा द्रुपद अपनी पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर रच रहे हैं। ऐसा सुना जाता है कि द्रौपदी अतीव सुन्दरी है। हम राजकुमार दुर्योधन को स्वयंवर पर भेजना चाहते हैं और आपको उसके साथ जाना होगा।"

मैंने साथ जाने की स्वीकृति उनको दे दी। अतः घर पहुंच मैंने इस यात्रा की तैयारी आरम्भ कर दी।

हम पन्द्रह रथों में इस यात्रा पर चल पड़े। एक रथ में दुर्योधन और कर्ण बैठे थे। दुःशासन और दुर्योधन के दो अन्य भाई दूसरे रथ में थे। मैं और मेरा सेवक एक रथ में थे। पांच रथों में अन्य सेवक आदि थे। पांच में हमारे वस्त्र आदि थे। दो रथों में मार्ग के लिए भोजनादि सामग्री थी। हमारे पहुंचने की सूचना महाराज द्रुपद को मिली तो हमें एक विशाल गृह, जो सब प्रकार से सुख-सुविधा के उपकरणों और सामग्री से सुसज्जित था, मिल गया। दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन तथा अन्य राजकुमार पृथक्-पृथक् आगारों में ठहराये गये। मुझको एक पृथक् आगार मिल गया। शेष सेवकों के लिए एक बहुत बड़ा आगार दे दिया गया। गृह में भोजनालय था जिसमें पांचाल राज्य की ओर से हमारी रुचि के अनुसार भोजन तैयार करने का प्रबन्ध था। राजा के सेवकों को यह बता दिया गया था कि मैं दुर्योधन के साथ कौरव राज्य का मन्त्री हूं। अतः मुझसे पूछे बिना राजकुमारों से मिलने की किसी को आज्ञा नहीं।

स्वयंवर का दिन आया। उस दिन स्वयंवर-यज्ञ की पूर्णाहुति पड़नी थी। पूर्णाहुति के पूर्व ही सब राजे, महाराजे, राजकुमार अपने-अपने नियत स्थानों पर आ बैठे थे।

स्वयंवर के लिए रंगभूमि, जिसमें लक्ष्य बींधने की प्रतियोगिता होनी थी, शिशुमार के आकार की बनी थी। शिरोभाग में सब राजा, राजकुमार अपने-अपने मंचों पर बैठे थे।

नगर के ईशान कोण में सुन्दर एवं समतल भूमि पर स्वयंवर सभा तथा रंग-मंडप था। यह सब ओर से सुन्दर भवनों द्वारा घिरा हुआ अति शोभायमान हो रहा था।

रंग-मंडप के बाहर प्राचीर थी और उसके बाहर एक चौड़ी खाई थी। उस खाई के चारों ओर दस सहस्र सुभट्ट भालों, खड्गों और तीक्ष्ण बाणों तथा धनुषों से अलंकृत खड़े थे।

रंगभूमि के चारों ओर कैलाश-शिखरों के समान ऊँचे और श्वेत रंग के गंगनचुम्बी भवन बने थे। ये महल सोने के जालीदार पर्दों और झालरों से सजाए गये थे। महलों की भूमि और दीवारों पर मणिमाणिक्य इत्यादि रत्न जड़े हुए थे, जो अति सुन्दर प्रतीत हो रहे थे।

इन भवनों पर चढ़ने के लिए विशाल, सुखकारक सीढ़ियां बनी थीं। इनके झरोखों में बड़े-बड़े आसन और बिछावन लगे थे। इनमें वे राजे-राजकुमार बैठाये गए थे जो स्वयंवर में प्रत्याशी के रूप में आये हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब सब दर्शक और विवाह के प्रत्याशी अपने-अपने स्थानों पर आ बैठे तब ब्राह्मण यज्ञ में पूर्णाहुति देने लगे। इसके पश्चात् विभिन्न वाद्य बजे और तदनन्तर धृष्टद्युम्न अपनी बहिन द्रौपदी को लेकर रंगभूमि के मध्य में, उस लक्ष्य के समीप जो बींधा जाना था, आ खड़ा हुआ। द्रौपदी सुन्दर वस्त्र-भूषणों से अलंकृत थी। उसने हाथ में सुनहरी तारों से अलंकृत एक बड़ी और सुन्दर जयमाला पकड़ी थी। सब राजकुमार उसके सौन्दर्य और शोभा को देख स्तब्ध रह गये।

अब धृष्टद्युम्न वहां आ पहुंचा, वाद्य बजने बन्द हो गये। इस समय ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन पढ़ा। तदनन्तर धृष्टद्युम्न ने सिंह समान शब्दों में घोषणा की–

"हे पधारे हुए भूपाल गण! कृपया ध्यान से श्रवण करें। यह धनुष है और पांच बाण में उस मछली की आंख बींधनी है। जो उस घूम रहे चक्र के छेदों में से बाण चलाकर मछली की आंख बींधेगा, वह उत्तम कुल वाला कुशल वीर मेरी बहिन से विवाह कर सकेगा।"

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्न ने वहां पधारे राजे-महाराजों का नामगोत्र अपनी बहन को सुनाते हुए कहा–

"बहिन, यह देखो दुर्योधन, दुर्विषह, दुर्ममुम, दुःशासन इत्यादि महाराज धृतराष्ट्र के पुत्र भरतवंशीय राजकुमार हैं।" इसके पश्चात् उसने नामों की एक बहुत लम्बी सूची पढ़कर सुनाई और कहा, "ये सब राजा-महाराजा अमूल्य और सुन्दर भूषणों से सज-धज कर बैठे हैं।"

धृष्टद्युम्न नाम सुनाता जाता था और उन भवनों की ओर संकेत करता जाता था जिनमें वे राजकुमार बैठे थे। जिस-जिसका नाम बोला जाता था, उसका मुख हर्ष में पुलकित हो उठता था। वे सब द्रौपदी के अतुल सौन्दर्य को मन्त्र-मुग्ध हुए देख रहे थे। परन्तु जब वे घूमते चक्र और उस पर बींधी जाने वाली मछली को देखते तो उनके मुख पर निराशा की कालिमा दौड़ जाती थी।

धृष्टद्युम्न की सूची में कृष्ण-बलराम का नाम सुनाया गया जो केवल आशीर्वाद देने के लिए आए थे, तो पूर्ण रंगभूमि में पहले निस्तब्धता और पीछे मक्खियों की सी भनभनाहट के समान चर्चा हाने लगी। दुर्योधन ने भी पूछ लिया, "कौन है यह?"

"वह देखिये, दाहिने हाथ से पांचवे भवन में नीलवर्ण युवक, कानों के कुंडल तथा मोर के समान मुकुटधारी कृष्ण हैं।" मैंने बताया।

"इसने ही कंस को मारा था क्या?"

"जी।"

"विश्वास नहीं आता।"

"मैंने यह युद्ध अपनी आंखों से देखा था"

इस पर दुर्योधन चुप कर गया। देवलोक के कुछ प्रमुख व्यक्ति रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनी कुमार इत्यादि भी वहां पधारे थे। मैंने ब्राह्मणों के कक्ष की ओर देखा तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां बैठे पांचों पांडवों को पहचान हैरान रह गया। वे ब्राह्मण वेश-भूषा में थे और साधारणतया पहिचाने नहीं जा सकते थे। परन्तु मुझे उनके जीवित होने का ज्ञान था, इस कारण पहिचानने में कठिनाई नहीं हुई। वे उन्हीं वस्त्रों में थे जिनमें भीख मांगते थे। इनके अतिरिक्त उन्होंने अपने को छुपाने के लिए अपने शरीर पर भस्म लगा रखी थी। भीम तो सभा-मंडप में बैठे सब वीरों में अधिक तेजोमय दिखाई देता था।

मैं कृष्ण और बलराम की तरफ देखने लगा। यह देखकर मुझको अति विस्मय हुआ कि कृष्ण बलराम को उँगली के संकेत से अर्जुन इत्यादि पांडवों को दिखा रहा है। मुझको कुछ ऐसा समझ आया कि वह भी इनको पहचान गया है।

दुर्योधन और कर्ण तो द्रौपदी के अतिरिक्त कुछ देख नहीं रहे थे। जब धृष्टद्युम्न का कथन समाप्त हुआ तो पुनः नक्कारे और दुंदुभी तथा अन्य वाद्य बजने लगे।

वाद्य बन्द हुए। धृष्टद्युम्न द्रौपदी को लेकर एक ओर हट गया। इस समय एक चारण हाथ में सूची लिए हुए आगे आकर मध्य में खड़ा हो गया और एक-एक राजकुमार का नाम पढ़ने लगा। जिसका नाम लिया जाता था, वह आगे आता था। धनुष को देखता, उठाता और चिल्ला चढ़ाने का यत्न करता था। चिल्ला न चढ़ा सकने पर लज्जित हो धनुष को वहां रख, भूमि की ओर देखता हुआ लौट जाता था।

:18:

बहुत से राजा तो उस बृहत् धनुष को उठा ही नहीं सके। कुछ उसको उठाने में सफल हुए परन्तु चिल्ला नहीं चढ़ा सके। कुछ तो चिल्ला चढ़ाने में झटका खा दूर जा गिरे थे।

केवल कर्ण था, जो धनुष को उठाकर चिल्ला चढ़ा सका था। जब कर्ण धनुष उठाने लगा और द्रौपदी ने उसका नाम तथा उसके पिता का नाम सुना तो ऊँचे स्वर में कह दिया, "मैं सूतपुत्र को नहीं वरूंगी।"

इससे कर्ण ने क्रोध में द्रौपदी की ओर देखा और कहा, "तो तुम मरणोपर्यन्त कुंवारी रहोगी।"

इतना कह उसने एक-एक कर पांचों बाण छोड़े। वे निष्फल गये। मुझको कर्ण क्रोध में कांपता प्रतीत हुआ और इसी कारण उसका निशाना चूक गया था।

अपनी असफलता और द्रौपदी के कटु वाक्यों के कारण वह कांपता हुआ अति क्रोध-भरी दृष्टि से द्रौपदी की ओर देखने लगा। इस समय धृष्टद्युम्न ने अपना खड्ग नग्न कर लिया। इस पर अन्य राजाओं ने कर्ण को, "हट जाओ! हट जाओ!!" के शब्दों से सम्बोधित किया। विवश कर्ण अपने स्थन पर आ गया।

कर्ण से पूर्व दुर्योधन धनुष उठा चिल्ला न चढ़ा सकने के कारण निराश लौट चुका था। कर्ण ने अपने स्थान पर आते ही कहा, "राजकुमारी के कटु वचन ने ही मुझे सफल नहीं होने दिया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्योधन हँस पड़ा। इस पर कर्ण ने कहा, "मुझको विश्वास है कि कोई भी लक्ष्य को बींध नहीं सकेगा। तब...तब मैं इसका हरण करूंगा। मैंने सबसे अधिक पराक्रम दिखाया है। मैं ही इससे विवाह का अधिकारी हूं।"

मैंने निवेदन कर दिया, "अंगराज! यह सम्भव नहीं। यहां सुरक्षा का प्रबन्ध अति श्रेष्ठ है।"

"मैं यत्न तो करूंगा। भले ही इस यत्न में हत्या हो जाये। वह छोकरा, मुझको खड्ग दिखाता था।"

हम अभी बात ही कर रहे थे कि चारण की सूची समाप्त हो गयी। इस पर धृष्टद्युम्न ने कह दिया, "जिन राजाओं की सूची हमारे पास थी, वह समाप्त हो गयी है। यदि कोई ऐसा कुलीन यहां विद्यमान हो, जिसके आने की सूचना हमें न मिली हो और इस स्वयंवर की प्रतियोगिता में वह भाग लेना चाहे, तो मैं उसको सादर आमन्त्रित करता हूं।"

कर्ण कूदकर पुनः रंगभूमि में आना चाहता था, परन्तु दुर्योधन ने उसका हाथ पकड़कर उसे जाने नहीं दिया, "अभी नहीं, मित्र! ठहरो!" उसने कह दिया।

दुर्योधन के कहने का अभिप्राय यह था कि कर्ण की बात वह कहेगा। इस समय ब्राह्मणों के कक्ष में से भिखारियों के वस्त्र में हृष्ट-पुष्ट एक ब्राह्मण अपने स्थान से आगे बढ़ आया और ऊँचे स्वर में धृष्टद्युम्न को सम्बोधित कर बोला, "वीर कुमार! अभी मैं हूं और मैं इसमें भाग लेना चाहता हूं।"

सब उसकी ओर देखने लगे। मैं पहचान गया कि यह अर्जुन है। दुर्योधन ने मुझसे पूछा, "यह कौन पागल है?"

मैंने अपने आह्लाद को छुपाते हुए कहा, "पहिचान नहीं सका।"

उस ब्राह्मण को देख द्रुपद सिंहासन से उठ खड़ा हुआ, परन्तु समीप बैठे व्यास जी ने, उसके हाथ-पर अपना हाथ रख उसे शान्त रहने को कहा।

धृष्टद्युम्न कुछ कहना चाहता था, परन्तु अर्जुन उस हा-हा-कार की ओर जो चारों ओर मच रहा था, ध्यान न देता हुआ लपककर लक्ष्य के समीप जा पहुंचा। उसने सहज ही धनुष उठाया और बाण ले चिल्ला चढ़ाने लगा।

सब दर्शकों के श्वास रुक गये। पूर्ण मंडप में शान्ति छा गई। इस समय मेरा ध्यान कृष्ण की ओर चला गया। वह बलराम को अर्जुन की ओर उँगली कर कुछ बता रहा था।

अर्जुन ने प्रत्यंचा चढ़ा दी। उसने बाण ताना तो सब ध्यान से उसकी ओर देखने लगे। अर्जुन ने एक बार यज्ञमंडप में भगवान् शंकर की स्थापित मूर्ति को नमस्कार किया और तत्पश्चात् कुण्ड की ओर देखकर बाण लक्ष्य की ओर छोड़ दिया।

पहले ही बाण से मछली की आंख बिंध गई। इस चातुर्य को देख रंग-मंडप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण-कक्ष से साधु! साधु!! के घोष होने लगे।

धृष्टद्युम्न ने, हाथ का संकेत कर क्षत्रियों की ओर से निन्दासूचक और ब्राह्मणों की ओर से घोषों को शान्त कर, द्रौपदी के सामने जयमाला लेने के लिए तैयार खड़े उस भिखारी-रूपी अर्जुन से पूछ लिया, "किस कुल में हो देवता?"

"ब्राह्मण हूं श्रीमान्!"

"यह स्वयंवर क्षत्रियों के लिए था।"

"तो क्या ब्राह्मण क्षत्रियों से कम कुलीन हैं?"

धृष्टद्युम्न कुछ कहना चाहता था कि द्रौपदी उत्तर से सन्तुष्ट हो आगे बढ़ आई और उसने जयमाला विजयी ब्राह्मण के गले में डाल दी।

अर्जुन ने द्रौपदी को कहा, "भद्रे! चलो अपने पिता पांचालराज से आशीर्वाद प्राप्त करो। हमें शीघ्र यहां से चलना है।"

अर्जुन द्रौपदी के आगे-आगे महाराज द्रुपद के सिंहासन की ओर चल पड़ा। अभी वे वहां पहुंच नहीं सके थे कि कर्ण अपने स्थान से कूदकर रंगभूमि में जा पहुंचा और ऊँचे स्वर में महाराज द्रुपद और वहां उपस्थिति क्षत्रियों तथा राजाओं की ओर संकेत कर कहने लगा, "पांचाल राज्याधिपति द्रुपद! यह कंगला ब्राह्मण एक नरेश की कुमारी को पाने का अधिकारी नहीं हो सकता। यदि तुमने इस कार्य की स्वीकृति दी तो हम एकत्रित राजागण, तुम्हारी इस बात का विरोध करेंगे और इस कुमारी को हर कर ले जायेंगे।"

कर्ण की इस ललकार को सुन, दुर्योधन के सभी भाई, जो वहां पर उपस्थिति थे, अपने-अपने खड्ग लेकर रंगभूमि में द्रौपदी की ओर लपके। धृष्टद्युम्न भी द्रौपदी और उसको ले जाने वाले ब्राह्मणों की ओर लपका। उसका विचार भी यही था कि स्वयंवर की पूर्ति हो जाने पर भी, यह ब्राह्मण जो अज्ञात कुल का है, द्रौपदी को पाने का अधिकारी नहीं है।

अर्जुन ने जब धृतराष्ट्र-पुत्रों को तथा अन्य राजाओं को अपनी ओर युद्ध करने के लिए आते देखा तो उसने पुनः वही धनुष उठा लिया, जिससे उसने लक्ष्य को बींधा था और शेष बाण उठा सब राजाओं का विरोध करने के लिए खड़ा हो गया। द्रौपदी उसके पीछे खड़ी हो गई। महाराज द्रुपद इस परिस्थिति से अत्यन्त भयभीत हो अनिश्चित मन खड़े रह गये।

दूसरी ओर ब्राह्मण, जिन्होंने एक ब्राह्मण के लक्ष्य बींधने पर साधुवाद किया था, अपने स्थान से उठ अर्जुन और राजाओं के बीच खड़े हो गये। वे राजाओं को अधर्मी इत्यादि अपशब्द कहने लगे।

इन ब्राह्मणों में भीम, नकुल और सहदेव तथा युधिष्ठिर भी थे। वे ब्राह्मणों को शान्त कर रहे थे, "विप्रवर! आप चिन्ता न करें। आप सब पीछे हट जाएं। इन राजाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपने अधर्माचरण का फल भोगने दें।"

जब तीनों भाई ब्राह्मणों को पीछे हटा रहे थे, भीम ने यज्ञ-मंडप का एक विशाल खम्भा उखाड़ लिया और राजाओं पर प्रहार करने के लिए तैयार हो गया। इस समय अर्जुन ने एक बाण छोड़कर कर्ण को जो सबसे आगे खड़ा था, घायल कर दिया। दूसरा बाण वह दुर्योधन के ऊपर चलाने वाला था कि कृष्ण और बलराम राजाओं के बीच आ खड़े हुए।

कृष्ण ने अर्जुन को और भीम को एक ओर तथा राजाओं को दूसरी ओर शान्त करते हुए कहा, "वीरवर! ब्राह्मण तो क्षत्रियों से भी अधिक मान तथा प्रतिष्ठा के पात्र होते हैं। कुमार धृष्टद्युम्न ने प्रतियोगिता का आह्वान करते समय यह नहीं कहा था कि राज्याधिकारियों के अतिरिक्त किसी को स्वयंवर में भाग लेने नहीं दिया जाएगा। उसने कुलीन होने की शर्त लगाई थी। अतः वेदानुयाईयों में कोई भी व्यक्ति नहीं जो ब्राह्मणों को कुलीन न मानता हो।

"इस पर भी आप सब मिलकर अकेले ब्राह्मण को मारने का यत्न कर क्या धर्म की बात कर रहे हैं?"

कर्ण तो घायल हो शान्त हो गया था। उसने समीप खड़े दुर्योधन को कहा, "इस ब्राह्मण के बाण तीक्ष्ण हैं।"

शल्य बिना कृष्ण को कहने का अवसर दिये भीम की ओर बढ़ा। भीम, वह खम्बा, जिससे वह राजाओं के समूह पर आक्रमण करने वाला था, भूमि पर रखकर आगे बढ़ा तथा शल्य को दोनों भुजाओं से पकड़कर उसने भूमि पर दे पटका।

कृष्ण ने हँसकर कहा, "शल्यवीर, सुनो! मैंने कहा है कि ये सब ब्राह्मण किसी प्रकार भी तुम्हारे राजकुल से हीन कुल के नहीं हैं और उस ब्राह्मण ने द्रौपदी को स्वयंवर में जीता है।"

समस्त राजागण, कर्ण और शल्य की दुर्दशा देख, भीगी बिल्ली की भांति पीछे हट गए। इस समय धृष्टद्युम्न, जो कृष्ण की बात सुन सन्तुष्ट हो गया था, उपद्रव करने वाले राजाओं को शान्त करने के लिए बाहर से सैनिक बुलाने रंगभूमि के द्वार की ओर जाने लगा।

यह सुअवसर जान अर्जुन ने द्रौपदी से कहा, "देवी! अब चलना चाहिए। घर से निकले बहुत देर हो गयी है। माँ प्रतीक्षा करती होंगी।"

द्रौपदी दूर से ही पिता को प्रणाम कर अर्जुन के पीछे-पीछे चल पड़ी। भीम ने पुनः यह खम्भा उठा लिया और उनके लिए मार्ग बनाता हुआ आगे चलने लगा। सब लोग इन तीनों को मार्ग देने के लिए इधर-उधर हटने लगे। ब्राह्मण लोग, एक ब्राह्मण के राज-कन्या वरने में सफल होने पर अति प्रसन्न थे। उनको कर्ण के इस कहने पर कि कंगले ब्राह्मण के साथ राज-कन्या विवाही नहीं जा सकती, क्रोध चढ़ आया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उसी कंगले ब्राह्मण के साथ द्रौपदी को जाते देख, सब प्रसन्नता से झूमते हुए राजकुमारी की जयघोष करने लगे।

:19:

अगले दिन बहुत प्रातः मैं व्यासजी के पास जा पहुंचा। मेरे वहां पहुंचते ही महर्षि ने पूछ लिया, "आइये संजय जी! बैठिए।"

मैंने उनके समीप बैठते हुए कहा, "भगवन्! दुर्योधन को पता चलने से पूर्व महाराज को पांडवों का परिचय मिल जाना चाहिए।"

"क्यों? किसी अनिष्ट की सम्भावना है क्या?"

"दुष्टों के मन की बात तो भगवान् भी नहीं जान सकता। मेरे लिए तो जानने का प्रश्न ही नहीं। मैं तो आपसे यह कहने आया हूं कि उनको प्रासाद में तुरन्त ले आना चाहिए।"

"वे आ रहे हैं। उनको लेने के लिए रथ भेजे गए हैं। रात उन्होंने आने से इन्कार कर दिया था और कहा था कि वे आज प्रातः आयेंगे और विवाह के विषय में निश्चय करेंगे। अतः उनको लेने रथ चले गये हैं।"

हम अभी विचार ही कर रहे थे कि पांडव, कुन्ती और द्रौपदी सहित रथों में बैठे राजप्रासाद में आ पहुंचे। हम अपने स्थान पर बैठे रहे। हमारा विचार था कि महाराज, जिनको हमारे वहां होने की सूचना थी, हमको बुला लेंगे।

कुछ समयोपरान्त महाराज का प्रतिहार महर्षि जी को बुलाने चला आया। महर्षि ने मुझको भी साथ ले लिया और हम उस आगार में पहुंचे, जहां महाराज, धृष्टद्युम्न और पांचों पांडव बैठे थे।

हमारे वहां पहुंचते ही सब महर्षि जी के सत्कार के लिए उठ खड़े हुए। महर्षि जी को बैठाया गया। महर्षि ने मुझको अपने समीप बैठा लिया।

महाराज द्रुपद ने प्रसन्नवदन कहा, "भगवन्! मैं अत्यन्त भाग्यशाली हूं कि परमात्मा ने मेरी याचना स्वीकार कर ली है। ये पांडव ही हैं। इनके साथ यह इनकी माता कुन्ती हैं। कल लक्ष्य बींधने वाला अर्जुन था। यह रहस्य अभी-अभी राजकुमार युधिष्ठिर ने बताया है। उन्होंने वारणावत की आग से बचकर निकलने का सविस्तार वृत्तान्त भी सुनाया है।

"अब आप आ गए हैं, अतः विवाह का मुहुर्त बता दीजिए, जिससे उसकी तैयारी की जा सके।"

यद्यपि महर्षि इस रहस्य को भलीभांति जानते थे, इस पर भी उन्होंने ध्यानपूर्वक कुमारों की ओर देखकर विस्मय प्रकट करते हुए पूछा, "बताओ युधिष्ठिर, तुमने पहले क्यों नहीं बताया?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर ने सब वृत्तान्त बताकर कहा, "जब तक महाराज ने हमको, हमारे शौर्य और पराक्रम के कारण स्वीकार नहीं किया, हमने अपने कुल का परिचय देना उचित नहीं समझा।

"महर्षिवर! इस समय एक घटना का उल्लेख कर देना उचित समझता हूं। कल जब अर्जुन, देवी द्रौपदी को, स्वयंवर में जीतकर घर जा रहा था, तब सहदेव माँ को सूचना देने घर जा पहुंचा। उसने माँ के सामने उपस्थित होकर कह दिया, "माँ! आज एक बहुत बड़ी वस्तु दान में मिली है।"

"माँ यद्यपि जानती थी कि हम स्वयंवर पर गये हुए हैं, परन्तु दान की बात सुन और नित्य भिक्षा का विचार कर समझी कि भिक्षा में कुछ विशेष वस्तु मिली है। अतः वह बोल उठी, "तो मैं नित्य की भांति सब में बांट दूंगी।"

"इस पर सहदेव समझाने लगा, 'माँ, यह एक ही वस्तु है और...।'

माँ ने बात बीच में ही काटकर कह दिया, 'कितनी ही बड़ी क्यों न हो, सबको मिल जाएगी।'

"माँ! वह अर्जुन को...।"

"किसी को भी मिली हो। सबका भाग उसमें होगा।"

माँ के इस प्रकार तीन बार कहने पर सहदेव ने हँसते हुए पूछ लिया, "माँ, सत्य कहती हो न?"

"तुमने मुझको झूठ बोलते कब देखा है?"

"अर्जुन नहीं मानेगा माँ!" अब सहदेव ने माँ को खिझाने के लिए कहना आरम्भ कर दिया।

"यदि अर्जुन मेरा पुत्र है तो माँ की बात का उल्लंघन नहीं करेगा।"

"इस समय भीम और अर्जुन द्रौपदी को लिए वहां पहुंच गए। हम तो अभी और भी पीछे थे। माँ राजकुमारी को देख भौंचक्क रह गयी। जब कृष्णादि चले गये तो सहदेव ने कह दिया, 'लो माँ! बांटो और अपनी बात सत्य करो।'

"इस पर माँ ने अपनी भूल का उल्लेख किया।

"अर्जुन ने कह दिया, 'मैं इसको बड़े भाई के लिए जीत कर लाया हूं और यह उनके लिए ही है।'

"इस पर भीम सहित नकुल और सहदेव कहने लगे, 'जब बड़े भाई को आनायास ही पत्नी मिल रही है, तो हम माँ के वचन का पालन करने का हठ करेंगे।'

"माँ! अपने वचनों से पीछे हटना नहीं चाहती। अर्जुन अपने निश्चय कि वह बड़े भाई की सम्पत्ति है, पर दृढ़ है। मुझे माँ का निर्णय स्वीकार है"

महर्षि व्यास युधिष्ठिर की बात सुनकर हँस पड़े। इस पर महाराज द्रुपद ने कह दिया, "मैं तो अपने हाथ से ऐसी अधर्मयुक्त बात नहीं कर सकता।"

इस पर अर्जुन ने कह दिया, "महाराज! आप अपनी कन्या लक्ष्य बींधने वाले को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे चुके हैं। अब तो लोक दिखावा ही करने वाले हैं। यह बात तो मेरी है। मैंने इसका वरण अपने ज्येष्ठ भ्राता के लिए किया है और उन्होंने माताजी की कही बात सत्य करने का निश्चय कर लिया है।"

"परन्तु अर्जुन! यह अधर्म है।"

"यह हम परस्पर विचार कर लेंगे।"

"महर्षि जी!" द्रुपद ने याचना के भाव-से उनकी ओर देखकर कहा, "आप तो धर्ममूर्ति हैं आप ही इनको कुछ धर्म का उपदेश दीजिये। मुझे तो कुछ समझ नहीं आ रहा। मेरी मति में और लोकमत तथा वेदमत से भी यह धर्म के विरुद्ध है।"

अपने पिता के कथन का समर्थन करते हुए धृष्टद्युम्न ने भी कह दिया–

"भगवन्! बड़ा भाई सदाचारी होता हुआ छोटे भाई की स्त्री के साथ कैसे विवाह कर सकता है?"

इस पर युधिष्ठिर ने कहा–

"सुना है और पुराणों में भी कहा है–जटिला नाम वाली गौतम गोत्र की कन्या ने सात ऋषियों के साथ विवाह किया था। इसी प्रकार कण्डु मुनि की पुत्री वाक्षी ने तपस्या में पवित्र अन्तःकरण वाले दस प्रचेताओं के साथ एक साथ विवाह-सम्बन्ध था"

इस समय कुन्ती ने कह दिया, "यह ठीक है कि मैंने भिक्षा में कुछ विशेष वस्तु प्राप्त समझकर ही बांट देने की बात कही थी। परन्तु मेरे कहने से पूर्व भी पांचों भाई द्रौपदी के पूर्व-जन्म की कथा सुनकर ऐसी धारणा बना बैठे प्रतीत होते हैं।

एक विद्वान् ब्राह्मण ने इनको एक कथा सुनाई है। एक बार एक ऋषिकन्या ने भगवान् शिव से वर मांगा कि उसे योग्य पति मिले। शिव ध्यानमग्न थे, इस कारण कन्या ने पांच बार योग्य पति प्राप्त करने का वर मांगा। शिव सुन रहे थे। उन्होंने वर दिया कि चूंकि उसने पांच बार वर मांगा है, इस कारण उसे पांच पति प्राप्त होंगे। इस पर भयभीत हो उसने प्राण त्याग दिये थे। यही कन्या अब महाराज द्रुपद के घर उत्पन्न हुई है।

इससे मैं कहती हूं कि इस प्रकार की धारणा बन जाने के पश्चात् तो यह ही उचित होगा कि लड़की का विवाह पांचों से कर दिया जाये।"

इस समय मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा, "महाराज! यदि मुझको कुछ कहने की स्वीकृति दें तो मैं भी कुछ निवेदन करूं?"

"हाँ-हाँ, संजय जी! आप भी कहिये।"

"मेरा कहना यह है कि पूर्व-जन्म की बात क्या है और क्या नहीं है, वह हमारी वर्तमान की भावनाओं और कर्मों का आधार नहीं बन सकती। प्रारब्ध शास्त्रीय कर्मों से संशोधित किए जा सकते हैं। यदि ऐसा न हो तो रुग्ण होने पर कोई चिकित्सा ही न कराये।

"दूसरे, माताजी ने भूल की है अथवा नहीं की, इसका भी प्रभाव किसी कर्म पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो सकता। मनुष्य में बुद्धि है। भूल को सुधारने की शक्ति है। इस कारण भूल को भूल समझ सुधारा जा सकता है।

"मैं समझता हूं कि विवाह एकपक्षीय कर्म नहीं। इसमें एक पक्ष पत्नी का भी तो है। इस कारण मेरा निवेदन है कि द्रौपदी के समक्ष पूरी परिस्थिति रख दी जाए। उसने जयमाला अर्जुन के गले में डाली है। इसका यह अर्थ भी नहीं कि वह अर्जुन की दासी बन गयी है और अर्जुन चाहे जिसको दान-दक्षिणा में दे सकता है। उसने अर्जुन को पति के रूप में वरा है, न कि वह अर्जुन के पास बिक गयी है।

"अर्जुन उसको अपनी इच्छा बता सकता है, परन्तु उसकी इच्छा के बिना वह, न तो उसे युधिष्ठिर को सौंप सकता है न ही किसी अन्य को। ऐसा भी हो सकता है कि इस विषय में यदि वह अपनी इच्छा उस पर बलपूर्वक थोपना चाहे तो वह इसको भी छोड़ जाए।"

मेरी बात दोनों पक्षों को पसन्द आई। वे यह तो समझ गये कि स्वयंवर में जीतने का अर्थ जुए में कोई धनराशि जीतने के तुल्य नहीं है।

द्रौपदी को वहां बुलाया गया। उसके सामने कुन्ती, अर्जुन और युधिष्ठिर की बात बताकर पूछा गया कि वह क्या चाहती है?

द्रौपदी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया, "पिताजी! यह मेरी सास के घर की बात है। आप इसमें हस्तक्षेप न करें।"

द्रौपदी के इस कथन ने बात समाप्त कर दी। विवाह उसी रात सम्पन्न करने का निश्चय हो गया।

:20:

दुर्योधन के हस्तिनापुर पहुंचने से पूर्व ही द्रौपदी के कुरु-वंश के एक राजकुमार को वरने का समाचार पहुंच गया था। इस समाचार से धृतराष्ट्र यह समझा कि वह कुरुवंशीय कुमार दुर्योधन ही हो सकता है। इससे धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर में हर्ष प्रदर्शन की आज्ञा दे दी।

हस्तिनापुर में इस अवसर पर, प्रसन्नता प्रकट करने के लिए दीपावली करने का आदेश हो गया। विदुरजी इस विषय में धृतराष्ट्र को बधाई देने के लिए राजप्रासाद में पहुंच गये। वहां जाकर उनको धृतराष्ट्र के भ्रम का ज्ञान हुआ। अतः उन्होंने पूछ लिया, "महाराज! यह समाचार कौन लाया है?" इस पर महाराज विदुरजी का मुख देखते रह गये। कुछ विचार कर उन्होंने पूछ लिया, "तो क्या सत्य नहीं है?"

"महाराज! समाचार तो सत्य है, परन्तु इसका अर्थ वह नहीं, जो आपने समझा है। जो शर्त महाराज द्रुपद ने द्रौपदी को पाने के लिए रखी थी, वह संसार में कौन पूर्ण कर सकता था?"

धृतराष्ट्र के मुख से निकल गया, "कर्ण।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कर्ण में एक दोष है, महाराज! वह अपने ध्यान को लक्ष्य पर केन्द्रित करने की शक्ति नहीं रखता।

"एक बार द्रोणाचार्यजी ने पेड़ पर रखे एक छोटे से कृत्रिम पक्षी की आँख बींधने के लिए राजकुमारों को बारी-बारी से कहा था। प्रत्येक से वे बाण चलाने से पूर्व पूछते थे—"क्या देख रहे हो?"

"राजकुमार अपने सामने दिखाई देने वाली वस्तुओं का उल्लेख कर देते थे। वे लक्ष्य बींधने के लिए बाण चलाते तो असफल हो जाते थे। कर्ण को भी कहा गया और बाण चलाने से पूर्व भी वही प्रश्न पूछा गया। कर्ण ने भी वैसा ही उत्तर दिया और वह भी उन सब की भांति असफल रह गया। सब-के-सब राजकुमारों में केवल अर्जुन ही था, जिससे जब प्रश्न किया गया तो उसने कहा कि वह तो केवल पक्षी की आँख को देखता है, उसको अन्य कुछ दिखाई नहीं देता। अर्जुन लक्ष्य बींधने में सफल हुआ था। मेरा विश्वास है कि कर्ण सुन्दरी द्रौपदी को देख अपना ध्यान एकाग्र नहीं कर सका होगा।"

"तो कौन है जो द्रौपदी को वर कर यहां ला रहा है?"

"महाराज! निस्सन्देह वह अर्जुन है। यह समाचार मिला है कि पांडव और कुन्ती वारणावत के लाख-गृह से बच गए थे और वे द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित थे।"

धृतराष्ट्र का मुख इस समाचार से विवर्ण हो गया। उन्होंने सेवक को बुलाकर दीपावली मनाने की आज्ञा वापस ले ली। विदुरजी ने कह दिया, "महाराज! पूर्ण समाचार की प्रतीक्षा कीजिए और हर्ष उसके अनुरूप ही होना चाहिए।"

विदुरजी वहां से लौट आए। मैं जब हस्तिनापुर में पहुंच विदुरजी से मिलने गया तो उन्होंने मुझको धृतराष्ट्र की मनोवृत्ति का परिचय दिया। मुझे इससे अति दुःख हुआ। मैंने दीर्घ विश्वास छोड़कर कहा, "इस वंश का विनाश निश्चित है। नग्न अधर्म पनप नहीं सकता।"

मैं महाराज धृतराष्ट्र से मिलने गया तो उन्होंने अश्रु बहाते हुए स्वयंवर का पूर्ण वृत्तान्त सुना। जब मैं सब-कुछ कह चुका तो वे एक दीर्घ श्वास लेकर चुप कर रहे।

मैंने पूछ लिया, "महाराज! क्या बात है? पांडवों के बच जाने के सामचार से प्रसन्नता नहीं हुई है क्या?"

"यह बात नहीं, संजयजी! मुझको दुःख इस बात का है कि उनको मार डालने के प्रयत्न में मेरा भी हाथ है, पांडवों को भी यही समझ आएगा। इसके परिणामस्वरूप पांडव और दुर्योधन में मैत्री असम्भव हो जाएगी। जीवन-भर की शत्रुता का बीज पड़ गया है।"

मैंने विस्मय प्रकट कर कहा, "महाराज! दुर्योधन के विषय में तो सन्देह हो सकता है कि उसने वह लाख का गृह बनवाकर पांडवों को मार डालने का यत्न किया था। परन्तु आपके विषय में ऐसे सन्देह का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जहां तक दोनों में वैमनस्य का प्रश्न है, आपके मन में तो कोई ऐसी भावना नहीं है न? आपके लिए दोनों पक्ष बराबर हैं और यदि आप यत्न करें तो राजकुमारों का द्वेष मिट नहीं, तो कम अवश्य हो सकता है।"

"नहीं संजयजी, यह होना अब असम्भव प्रतीत होता है। मुझको तो कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा है कि पृथ्वी कौरवों और पांडवों के लिए छोटी रह गयी है। उनमें द्वेष निःशेष करने का केवल एक ही उपाय है कि एक पक्ष ही यहां रहे। अतः अब दोनों में से एक पक्ष निःशेष हो ही जाना चाहिए। मेरे लिए एक ओर सौ पुत्र हैं और दूसरी ओर केवल पांच। यह स्वाभाविक है कि मैं सौ को छोड़कर पांच का पक्ष नहीं ले सकता।"

मैं धृतराष्ट्र का यह प्रलाप सुन अवाक् रह गया। मुझको उनके इस प्रलाप में युक्ति कणिक की ही प्रतीत हुई। इस प्रकार की मिथ्या युक्तियों देना ही उस नीतिज्ञ का स्वभाव था। मैंने अति विनम्र भाव में कहा, "महाराज! आपके कथन में बहुत कुछ मिथ्या भ्रम है। प्रथम तो पांडवों ने आज तक कोई भी शत्रुता का कार्य नहीं किया। जब तक ऐसा कोई कार्य देखा न जाए, उनको शत्रु मान लेना बुद्धिमत्ता नहीं। दूसरे, यदि दोनों में शत्रुता बन गयी है, तो भी इसका निपटारा एक पक्ष के विनाश के अतिरिक्त ढंग से भी हो सकता है। हत्या तो कभी भी, किसी भी समस्या का सुझाव नहीं। तीसरे, आप सोने को लोहे के बाटों से तोलने लगे हैं। एक ओर सौ हैं तो दूसरी ओर केवल पांच। यह गणना सौ और पांच के गुणों के जाने बिना की जा रही है।"

धृतराष्ट्र चुप कर गए। उन्होंने बहुत विचारोपरान्त मुझसे पूछा, "तो आप क्या करने को कहते हैं?"

"महाराज! पितामह भीष्मजी हैं, द्रोणाचार्य हैं, उनकी सम्मति लीजिए। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि परिवार के दोनों अंग फलें-फूलें और पूर्वजों की ख्याति में वृद्धि करें।"

मुझे कुछ ऐसा समझ आया कि धृतराष्ट्र को मेरी इस बात से कुछ सन्तोष हुआ था। परन्तु पीछे दुर्योधनादि और कदाचित् कणिक की प्रेरणा से धृतराष्ट्र-पांडवों से युद्ध करने का निश्चय कर बैठा।

मैं यह समाचार सुनकर विदुरजी के पास पहुंचा। वे भी इस समाचार को सुन अति दुःखी हुए। विदुरजी इस युद्ध में कौरवों पूर्ण विनाश की सम्भावना देख रहे थे। इस कारण वह युद्ध नहीं चाहते थे। मैं भी युद्ध के पक्ष में नहीं था। मुझको कुछ ऐसा समझ आ रहा था कि पांडवों का पक्ष अभी पूर्ण रूप-से प्रबल नहीं हुआ।

पीछे, जब महाभारत का युद्ध हो चुका तो मेरा विचार बदल गया था। मैं महाभारत के युद्ध के परिणामों को देख इस विचार का हो गया था कि यदि उस समय युद्ध हो जाता तो वह इतना विनाशकारी सिद्ध न होता, जितना पीछे हुआ था।

उस समय कौरवों की निन्दा व्यापक थी। प्रजा और देश-विदेश के राजे-महाराजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौरवों की निन्दा व्यापक करते थकते नहीं थे। सब कहते थे कि जो अपने भाइयों को जीवित जला देने की दुष्टता कर सकते हैं, वे अवसर आने पर अपने मित्रों के साथ कुछ भी व्यवहार कर सकते हैं। यह बात कि दुर्योधन द्रौपदी को जीत न सकने के कारण अर्जुन से ईर्ष्या कर रहा है और इसी कारण उससे युद्ध चला रहा है, सबके मुख पर थी।

उस समय युद्ध होता तो निश्चय ही कौरवों की सहायता के लिए उतने राजे-महाराजे एकत्रित न हो सकते, जितने कुरुक्षेत्र में युद्ध के समय हुए थे।

पीछे युधिष्ठिर के अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए की बाजी पर लगा देने के कारण ही पांडवों के प्रति मान-प्रतिष्ठा बहुत कम हो गयी थी। इस पर भी यह निर्विवाद सत्य है कि मेरे रोकने से यह युद्ध न रुकता। इस युद्ध को रोकने में विदुर जी तथा भीष्म जी का मुख्य हाथ था।

विदुरजी भीष्मजी से मिले, द्रोणाचार्य से मिले और इन तीनों के प्रयत्न से पारिवारिक सम्मेलन करने का निश्चय हो गया। मुझे इस सम्मेलन में नहीं बुलाया गया। विदुरजी इस सम्मेलन में मुख्य रूप-से भाग ले रहे थे।

इस पर भी मुझको वह सम्मेलन देखने का अवसर मिला। जब इस सम्मेलन में आने का निमन्त्रण भीष्मजी को मिला तो मैं अपना दृष्टिकोण उनको समझा रहा था। धृतराष्ट्र का प्रतिहार पितामह को बुलाने आया तो उन्होंने पूछा, "किस कार्य से बुलाया है?"

"भगवन्! परिवार के सदस्यों की गोष्ठी हो रही है।"

"कौन-कौन आ रहे हैं?"

"इस समय वहां महाराज और महारानी के अतिरिक्त राजकुमार दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनि हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिहार गुरु द्रोणाचार्य और गुरु कृपाचार्य को बुलाने के लिए गये हैं।"

भीष्मजी चलने के लिए उठ खड़े हुए। इस पर मैं विदा मांग घर को जाने लगा तो भीष्मजी ने पूछ लिया, "तो आप इस सम्मेलन में नहीं जा रहे क्या?"

"नहीं महाराज! मैं आपके परिवार का प्राणी नहीं हूं।"

इस पर भीष्मजी कुछ विचार करने लगे। कुछ देर बाद विचार कर उन्होंने कह दिया, "गुरु द्रोण तथा कृपाचार्य भी तो परिवार के सदस्य नहीं हैं। चलिये।"

"महाराज! बिना बुलाए जाने पर अपमान हो सकता है।"

"नहीं; मैं बुला रहा हूं। आइये! आप महाराज द्रुपद से मिलकर आए हैं। इस कारण भी आपका इस सम्मेलन में उपस्थित होना अति आवश्यक है।"

मैं उनके साथ महाराज धृतराष्ट्र के प्रासाद में जा पहुंचा। वहां पहुंचते ही भीष्म ने मेरे वहां आने के विषय में कहा, "धृतराष्ट्र! मैं संजयजी को भी साथ ले आया हूं। इनसे पूर्ण परिस्थिति पर प्रकाश पड़ने की आशा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब चुप रहे। परिणाम यह हुआ कि मैं भीष्मजी के पीछे बैठ गया। धृतराष्ट्र ने उस सम्मेलन में विचारणीय विषय प्रस्तुत कर दिया। वे कहने लगे, "पांडव जीवित हैं। कुन्ती भी। वे कैसे वारणावत से आग में से निकलकर भाग सके, कोई नहीं जानता, न ही यह कोई जानता है कि उनके प्रासाद को आग किस प्रकार लगी। इस पर भी उनके गृह को आग लगाने और उनको जीवित जला देने का षड्यंत्र हमारे गले में डाला जा रहा है। मेरे विश्वस्त कर्मचारियों ने बताया है कि हस्तिनापुर की पूर्ण प्रजा दुर्योधन को दुष्ट और युधिष्ठिर इत्यादि को पीड़ित मान रही है।"

इस पर भीष्म जी ने पूछा लिया, "धृतराष्ट्र! वारणावत वाले गृह को आग लगाने की जांच करवायी गयी थी क्या?"

"आवश्यकता नहीं समझी गयी।"

"क्यों?"

"तत्कालीन मंत्री ने कहा था कि जो होना था, सो हो गया अब जांच से कुछ लाभ नहीं।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि आग मंत्री ने लगवाई थी?"

"यह सिद्ध तो हुआ नहीं।"

"तुमने तो जांच ही नहीं करवाई। इससे सिद्ध और असिद्ध होने की बात कैसे कह सकते हो? तुम्हारे भाई के लड़के जल गए और तुमने जांच नहीं करवाई। अब यदि दोष तुम्हारा माना जाता है तो ठीक ही है।"

"परन्तु पितामह! यह असत्य है।"

"क्या असत्य है? क्या वारणावत का गृह लाख का बना नहीं था? क्या उस गृह के निर्माण के लिए सामान हस्तिनापुर से नहीं गया था? क्या उस गृह-निर्माण करने वाले उज्जयिनी से नहीं आए थे? क्या वह गृह जलकर भस्म नहीं हुआ?

"तुमने गृह के लिए राल और लाख खरीदने वालों को पकड़ा नहीं। तुमने गृह निर्माण करने वालो को दण्ड नहीं दिया। तुमने उस दुष्ट मंत्री को दण्ड नहीं दिया, जिसने यह सब-कुछ करवाया और फिर जांच करनी व्यर्थ बताई।"

धृतराष्ट्र चुप कर गया। इस पर भीष्म ने पूछा, "अब तुम परिवार के लोगों को इस पाप में अपना साथी बनाने के लिए हमसे कहलवाना चाहते हो कि प्रजा झूठ कहती है? और किसलिए तुमने हमें बुलाया है?"

धृतराष्ट्र चुप ही रहा। भीष्मजी के अन्तिम प्रश्न का उत्तर दुर्योधन ने दिया। उसने कहा, "पितामह! पांडवों ने हमें बहुत बदनाम किया है। इस कारण हम उनको यहां नहीं आने देना चाहते। सुना है कि वे द्रुपद की सेना लेकर हस्तिनापुर की ओर चले आ रहे हैं। इस कारण हम उत्तर पांचाल के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करना चाहते हैं। इसीलिए ही आप सबको बुलाया है।"

"यह कैसे कहते हो कि द्रुपद की सेना आक्रमण करने आ रही है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमारे दूत समाचार लाये हैं कि पांडव अपनी पत्नी के साथ आ रहे हैं और धृष्टद्युम्न तथा उत्तर पांचाल की सेना उनके साथ है।"

"इस सूचना का अर्थ तो यह है कि पांडव स्वयंवर में विजयी घर लौट रहे हैं। उनका साला अपनी बहिन को छोड़ने के लिए संरक्षकों के साथ आ रहा है।"

"बाबा! यदि हम उनको उनके ही राज्य में जाकर नहीं रोकेंगे तो युद्ध हमारे राज्य में होगा। इससे हमारी दुहरी हानि होगी।"

"ठीक है। परन्तु युद्ध होगा तो हानि होगी? क्या बहू के घर आने से भी तुम्हारी हानि होगी?

"दुर्योधन, एक बात बताओ। जब यह निश्चय हो गया था कि विवाह होगा तो क्या महाराज द्रुपद ने तुमको विवाह में सम्मिलित होने का निमंत्रण नहीं दिया था?"

"हाँ दिया था। परन्तु मैंने सम्मिलित होना उचित नहीं समझा।"

"क्यों?"

"वह विवाह अधर्म का सूचक था। पांचों भाइयों का एक ही पत्नी से विवाह हो रहा था। मैं इस विवाह को विवाह नहीं मानता।"

"तो तुम इसको क्या मानते हो?"

"दुराचार।"

"कैसे? और व्यवस्था देने वाले तुम कौन हो? विवाह-कर्म, राज्य कार्य का अंग नहीं है। यह एक सामाजिक व्यवस्था है। इसमें धर्मशात्रियों का ही मत मान्य हो सकता है। जानते हो, यह विवाह किसने कराया है? महर्षि व्यास, कृष्ण द्वैपायन जी ने। उनके विद्वान और समाजशास्त्र के ज्ञाता होने में कोई सन्देह नहीं कर सकता।

"देखो दुर्योधन! मैं जानता हूं कि तुमने पांडवों की हत्या का षड्यंत्र किया था। यदि तुमने अकारण उन पर आक्रमण कर दिया तो मैं तुम्हारी ओर से न लड़कर पांडवों की ओर से युद्ध करूंगा।"

इस पर द्रोणाचार्य ने कह दिया, "महाराज! यज्ञसेन द्रुपद मेरा मित्र है और उसने इस मित्रता को अभी तक भंग नहीं किया। अतः मैं उसके विरुद्ध युद्ध नहीं करूंगा। हाँ, यदि उसने अकारण अपने राज्य पर आक्रमण होने की अवस्था में मुझसे सहायता मांगी तो मैं मित्र के नाते उसकी सहायता करूंगा।"

"परन्तु तात! धृतराष्ट्र ने कहा, "पांडव धर्मात्मा, शूरवीर और बुद्धिमान हैं। मेरे पुत्र उनकी स्पर्धा नहीं कर सकते। अतः वे यदि यहां आते हैं तो प्रजा-गण उनका मान करती है। उनको अपना राजा मानती है और स्वयमेव राज्य उनका हो जाता है। तब दुर्योधन और उसके भाइयों को क्या बनेगा?"

इस पर भीष्म जी को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने कह दिया, "धृतराष्ट्र! तुम्हारी मति मन्द पड़ गई है। तुम दो और दो चार मानने से भी इनकार करने लगे हो। भला यह बताओ कि द्रोणाचार्य जी धनुर्विद्या में संसार में अपने समान कोई नहीं रखते, तो क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयोग्य धनुर्धारी की महिमा बनाने के लिए गुरुजी की हत्या कर देनी चाहिए? क्यों आचार्य जी! इस अन्धे महाराज की युक्ति का यह अर्थ नहीं हो सकता क्या?"

दुर्योधन अपने पिता की सहायता के लिए बोल उठा, "पितामह! ऐसा तो होता ही है। हमारी परदादी माता सत्यवती ने अपने दुर्बल पुत्रों को राज्य दिवाने के लिए आपको वचनबद्ध कर लिया था।"

भीष्मजी हँस पड़े। हँसकर उन्होंने बताया, "आज से पैंतालीस वर्ष पूर्व संजयजी ने मुझे बताया था कि तुम्हारे परबाबा, अर्थात् मेरे पिताजी ने अन्याय किया था। परन्तु मैं संजयजी से सहमत नहीं हुआ था। संजयजी का कहना था कि अन्याय मुझसे नहीं अपितु भारत की प्रजा से हुआ था। महाराज शांतनु ने भारत को दुर्बल और मंदमति राजा देने के लिए मुझको प्रतिज्ञा-बद्ध कर लिया था। यह प्रजा पर अन्याय हुआ था।

"मूर्ख! इस सृष्टि पर अयोग्यों को जीवित रखने के लिए योग्य पुरुषों को जो बन्दी बना डालते हैं अथवा मार डालते हैं, वे पाप के भागी होते हैं। ऐसे पाप का परिणाम वही होता है जो कंस को भोगना पड़ा है।"

"पितामह! कंस मूर्ख था। उसको नवीन पट्ठे से मल्लयुद्ध करने के लिए तैयार ही नहीं होना था।" दुःशासन ने कह दिया।

"वह कहां तैयार हुआ था? उसने तो रंगभूमि के द्वार पर कैवल्यापीड़ हाथी को खड़ा कर रखा था। उसका विचार था कि कृष्ण को द्वार पर ही मार डाला जाएगा। परन्तु हुआ क्या? वे सब बाधाएं निःशेष हुईं और कृष्ण ने कंस को घसीट कर रंगभूमि में दे पटका।

"कंस के पाप उसके सर पर सवार होकर उसको दंगल में कृष्ण को बुलाने पर विवश कर रहे थे।

"सुनो! तुम मूर्खों ने अपनी शोभा संसार भर में फैला रखी है। भारत- भर में यह विख्यात हो रहा है कि तुम्हारे पिता ने अपनी विधवा भावज और उसके धर्मात्मा पुत्रों को जीवित जला देने का यत्न किया है। अब यदि तुम उनके शान्तिपूर्वक घर आने का विरोध करोगे तो भारत का एक भी नरेश तुम्हारी सहायता के लिए नहीं आएगा।"

"परन्तु एक भार्या के पांच पतियों की सहायता के लिए कौन आएगा?"

"सर्वप्रथम उस भार्या का पिता और भाई, उनके मित्र और सम्बन्धी। दूसरे, कृष्ण, बलराम और यादवों की पूर्ण सेना। तीसरे हस्तिनापुर की पूर्ण प्रजा।"

"हम सौ भाई और हमारी सेना क्या कुछ नहीं कर सकेगी?"

"तुम सौ भाइयों का शौर्य तो उस दिन देख लिया था जब तुम महाराज द्रुपद को पकड़ने के लिए गये थे। तुम सौ से तो पांच पांडव अधिक बलयुक्त सिद्ध हुए थे।"

सब युक्तियों से प्रबल युक्ति कौरवों का इस समय निस्सहाय होना था। इस कारण दुर्योधन ने पूछ लिया, "तो बाबा, आप हमको क्या सम्मति देते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पांडवों को आने दो। वे स्वयंवर जीत कर आए हैं। उनकी जीत को अपनी जीत मानो। उनका स्वागत करो। हस्तिनापुर को उनके जीवित आ जाने पर हर्ष मनाने दो। साथ ही स्वयं भी उस हर्ष में सम्मिलित हो जाओ।

"इस प्रकार अपने पूर्व पापों को धो डालो। शेष उनके आने पर विचार कर लेंगे।"

:21:

पांडव द्रौपदी और साथ ही महाराज द्रुपद से दिये हुए दहेज के साथ हस्तिनापुर पहुंचे। सोने-चांदी से भरे रथ, सुन्दर सुडौल अश्वों और भूषणों से सुसज्जित हाथी, ढेरों स्वर्ण-चांदी के आभूषण तथा भांति-भांति के अस्त्र-शस्त्र आदि सब द्रौपदी के पिता द्रुपद ने पांडवों को दिए थे। धृष्टद्युम्न इनको छोड़ने के लिए हस्तिनापुर तक आया।

जब पांडव हस्तिनापुर पहुंचे तो नागरिकों ने इनका भव्य स्वगत किया। पूर्ण नगर, पताकाओं, तोरणों और रंगारंग की ध्वजाओं से सजाया गया था। इनके नगर से गुजरने पर पुष्प-वर्षा की गयी और स्थान-स्थान पर इनको भेंट में अमूल्य वस्तुएं दी गयीं।

औपचारिक ढंग से दुर्योधन पांडवों के स्वागत के लिए प्रासाद के द्वार तक आया।

पहले दिन के हो-हल्ला के पश्चात् दुर्योधनादि का व्यवहार बहुत शीतल हो गया। वे स्पष्ट रूप में नागरिकों को जिन्होंने पांडवों के स्वागत में तथा उनको भेंट देने में कुछ अधिक उत्साह दिखाया था, डांटने-डपटने लगे।

प्रासाद में भी द्रौपदी के सौन्दर्य और सहृदयता के कारण प्रायः दास- दासियां उसकी सेवा के लिए लालायित रहने लगीं। कुन्ती की भी मान-प्रतिष्ठा बढ़ गयी। वह अपनी बहू के साथ महारानी के नाम से विख्यात होने लगी।

इन बातों ने कौरवों को अधीर कर दिया और वे स्वंय ही धृतराष्ट्र पर बल देने लगे कि अविलम्ब पांडवों को एक पृथक् राज्य दे दिया जाये।

भीष्म का मत था कि भाइयों के इकट्ठा रहने से उनका मनोमालिन्य दूर हो जायेगा, परन्तु जब धृतराष्ट्र पर बल दिया जाने लगा तो उसने सब वृद्धजनों के सम्मुख पांडवों के लिए पृथक् राज्य निर्माण करने का प्रस्ताव रख दिया। सबकी सम्मति से पांडवों को खांडवप्रस्थ देश दे दिया गया। और पांडव अपनी माता तथा पत्नी द्रौपदी को लेकर हस्तिनापुर छोड़ चले गये।

खांडवप्रस्थ जांगल्य देश था। वहां या तो ऊसर भूमि थी अथवा जंगल थे। अतः इस देश की राजधानी बनाने के लिए यमुना तट पर स्थान ढूंढा गया। वहां एक विशाल नगर की नींव रखी गयी और इसका नाम इन्द्रप्रस्थ रखा गया।

Central Library
Gurukul Kangri (Deemed to be University) Haridwar
167963

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग दो

: 1 :

पांडवों के खांडव क्षेत्र में चले जाने के पश्चात् एक दिन मुझको धृतराष्ट्र का निमन्त्रण मिला। मैं उनके आगार में जा पहुंचा। महाराज के पास दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण बैठे हुए थे। मैंने प्रणाम किया। महाराज धृतराष्ट्र ने बैठने का आदेश दे दिया। मैं बैठा तो दुर्योधन ने मुझको सम्बोधित करके कहा, ''तात! हमें ज्ञात हुआ है कि आपकी पाठशाला बन्द हो गयी है।''

''हां महाराज!''

''तो निर्वाह कैसे होता है?''

''महाराज! एक ब्राह्मण के लिये निर्वाह की कठिनाई कभी नहीं हुई। जब भी किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तो श्रीमान् जैसे किसी दयालु के पास जा पहुंचता हूं और वह एक ब्राह्मण को आवश्यकता में देख झोली भर देता है।''

''यह तो अति हीन अवस्था है। मांगने के लिए जाते हुए लज्जा तो लगती होगी।''

''लज्जा की बात नहीं महाराज। एक ब्राह्मण का धर्म है कि दान ले और दान दे।''

अब दुर्योधन बोला, ''तात! हमारे राज्य की आर्थिक स्थिति कमजोर है। अधिक कर लगाने का प्रश्न नहीं उठता। हम विचार कर रहे हैं कि कोई समर चलानी चाहिए और जिस देश पर आक्रमण हो उसे पराजित कर उससे कर प्राप्त करना चाहिए। आप उत्तरी भारत के प्रायः सभी देशों में भ्रमण कर चुके हैं। आप बताइये कि किस देश पर आक्रमण करना चाहिए, जिसके विरुद्ध कोई बहाना भी बन सके, साथ ही कम परिश्रम से अधिक लाभ हो।''

धन प्राप्त करने का यह ढंग विचित्र था और नैतिकता से हटकर था। इस कारण मैंने दृढ़तापूर्वक कह दिया, ''महाराज! मैं ऐसे किसी राज्य को नहीं जानता जिसमें किसी प्रकार का छिद्र निकल सके। युद्ध एक भयंकर कृत्य है। इसमें मानवों की हत्या के साथ-साथ आक्रमणकारी तथा आक्रान्ता दोनों का नैतिक पतन भी होता है। इस कारण मैं न तो किसी राज्य को किसी प्रकार से भी इतने भयंकर दंड का भागी समझता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूं, न ही इस साधारण कार्य के लिए युद्ध क्षम्य मानता हूं।"

"तो आप हमारी कठिनाई को दूर करने के क्या उपाय बताते हैं।"

"उपाय तो हैं यदि आप करना चाहें।"

"हां! हां! ! बताइये तो।" धृतराष्ट्र ने कहा।

"महाराज! सबसे प्रथम बात तो यह है कि प्रजा पर कर कम किये जायें। दूसरे यह कि प्रजा के मन में विश्वास बैठा दिया जाये कि यहां न्याय का राज्य है। किसी के साथ भी, भले ही वह अकिंचन और अपाहिज हो, अन्याय नहीं होगा। तीसरे, राज्य-परिवार के सदस्यों का जीवन सरल, शुद्ध, पवित्र और उपयोगी हो।"

"देखिये संजयजी! कर कैसे कम हो सकते हैं?"

"जैसे इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठर ने कम कर रखे हैं?"

"तो एक बात करिये। आप इन्द्रप्रस्थ जाइये। वहां की कर-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था को देखकर आइये। हम उसके अनुसार ही यहां पर व्यवस्था स्थापित करने का यत्न करेंगे।"

मैं तो स्वयं ही किसी बहाने इन्द्रप्रस्थ जाना चाहता था। युधिष्ठिर इत्यादि को मिलने के लिए चित्त कर रहा था। अतः मैंने धृतराष्ट्र का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मैंने कह दिया, "यह बात भी ठीक है यदि महाराज मुझे जाने के लिए कहते हैं तो मैं तैयार हूं, मेरे जाने का प्रबन्ध आप करवा देंगे तो मैं यथासम्भव वहां की व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर ला सकता हूं।

: 2 :

अतः मैं दुर्योधन से मौखिक आज्ञा ले इन्द्रप्रस्थ को चल पड़ा। रथ में मैं और मेरी पत्नी थे। तीसरे दिन हम इन्द्रप्रस्थ जा पहुंचे। पांडवों को यहां आये तीन वर्ष हो चुके थे। इन तीन वर्षों में वहां बहुत-कुछ नया बन चुका था।

नगर की प्राचीर बन चुकी थी। उस प्राचीर में ऊंचे और विशाल द्वार बनाये गये थे। ये द्वार दिन-रात खुले रहते थे। मार्ग विशाल कर दिये गये थे। उन पर नवीन गृह निर्माण हो चुके थे। नगर के भीतर और बाहर पेड़ लगा दिये गये थे। नगर में स्थान-स्थान पर क्रीड़ा-स्थल और उद्यान बन गये थे।

दुकानें भिन्न-भिन्न देशों के नाना प्रकार के माल से भरी हुई थीं और क्रय-विक्रय करने वालों की भीड़ लगी थी।

मैं राज-प्रासाद में जाकर ठहरने का विचार रखता था। नगर द्वार पर से यह पता कर कि राज-प्रासाद किधर है, मैं चल पड़ा।

राज-प्रासाद में मेरा और मेरी पत्नी का स्वागत हुआ। हमें सुसज्जित आगारों में ठहराया गया। विश्राम के बाद मैं महाराज युधिष्ठिर के आवास में पहुंच गया। युधिष्ठिर ने चरण-स्पर्श किये। मैंने आशीर्वाद दिया और युधिष्ठिर को गले से लगा लिया। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब युधिष्ठिर के पास बैठा था, सब परिवार द्रौपदी सहित वहां एकत्रित हो गया। हस्तिनापुर की, धृतराष्ट्र, दुर्योधन और उसके भाईयों की बातें होने लगीं।

इन्द्रप्रस्थ राज्य की स्थापना पर नारदजी आये थे और यह निश्चय करा गये थे कि द्रौपदी एक-एक वर्ष एक-एक पति के साथ रहेगी और इस बीच यदि कोई दूसरा उसके पास जायेगा तो बारह वर्ष बनवास करेगा। यह सब भाईयों ने सहर्ष स्वीकार किया था।

इस पर द्रौपदी के दो लड़के हो चुके थे। एक युधिष्ठिर से, जिसका नाम था—प्रतिबन्ध और दूसरा भीम से, इसका नाम था सुनसोम। इन दिनों द्रौपदी नकुल के आगारों में रहती थी। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा था कि वह तीसरी सन्तान को जन्म देने वाली है।

यह बात युधिष्ठिर ने बताई कि अर्जुन नारद द्वारा निश्चित नियम भंग करने के कारण बारह वर्ष के लिए बाहर गया हुआ है।

नकुल ने बताया, ''एक ब्राह्मण की गाय कुछ चोर चुराकर लिये जा रहे थे। उस ब्राह्मण ने हा-हाकार मचाई तो अर्जुन गाय छुड़ाने के लिए तैयार हो गया। उस समय उसका धनुष-वाण घटनावश युधिष्ठिर जी के कक्ष में पड़ा था। वह वहां धनुष-वाण लेने के लिए गया तो महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदी दोनों वहां थे। अर्जुन ने गाय तो छुड़ा दी। परन्तु वचनानुसार वह बारह वर्ष तक घर से बाहर भ्रमणार्थ चला गया है।''

मुझको अर्जुन के इन्द्रप्रस्थ से बाहर जाने की सूचना से कुछ चिन्ता हो गयी। अर्जुन अकेला ही गया था। उसका जीवन भय में हो सकता था। उसकी अनुपस्थिति में इन्द्रप्रस्थ भी आकस्मिक आक्रमण होने पर अरक्षित था।

मैंने कहा, ''आपने अर्जुन को मना क्यों नहीं किया? उसने निजी कार्य के लिए वचन भंग नहीं किया था। अतः यह कोई अपराध भी नहीं था।''

''हम सब ने समझाने का यत्न किया था। परन्तु अर्जुन माना नहीं। उसका कहना था कि अपने मन की शान्ति के लिए वह वन को जाएगा।''

मैं समझता था कि यह सरलता की पराकाष्ठा है और इसका अभिप्राय मूर्खता है। इस पर भी मूर्खों को मूर्ख कहना भी मूर्खता है। अतः मैं चुप कर रहा।

अब मैंने नगर में घूम-घूम कर लोगों के विचार जानने आरम्भ किये। उनसे करों के विषय में और वस्तुओं के दामों के विषय में जानकारी प्राप्त की। वहां पर की व्यापारिक अवस्था की जानकारी ली और साथ ही पारिवारिक सुख-सुविधाओं के विषय में जाना।

राज्य-प्रसाद में भी राज्य-सम्बन्धी वार्तालाप हुआ। मैंने युधिष्ठिर को जब हम एकान्त में थे तो यह बता दिया, ''हस्तिनापुर से लोग इन्द्रप्रस्थ में आने लगे हैं। इसका कारण भी मैं नगर में घूम कर जान आया हूं।

''आपके यहां कर बहुत कम हैं। वस्तुओं के राज्य में आने पर तो कर है, बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने पर नहीं है। व्यापारियों के लिए पंथागार शुद्ध, पवित्र, सुन्दर और सुरक्षित हैं। ढेरों स्वर्ण उन पंथागारों में रहता है और चोरी नहीं होती। इन्द्रप्रस्थ आपकी इस कर-व्यवस्था के कारण एक भारी व्यापार की मंडी बन रही है।

"यहां वस्तुओं के दाम कम और दरें निश्चित हैं। सबसे बड़ी बात प्रजा के मन में यह बैठी है कि सहस्रों स्वर्ण एक बालक के हाथ में भी सुरक्षित हैं। यहां चोरी नहीं होती, डाके नहीं पड़ते।

"खाने-पीने के पदार्थ सुगमता से प्राप्त हैं। लोग धर्म-परायण और परस्पर विश्वास करते हैं।"

इस पर युधिष्ठिर ने कह दिया, "इस सब का रहस्य हमारी आर्थिक नीति है। हम उपजाऊ वस्तुओं पर धन व्यय करते हैं। व्यर्थ की किसी भी बात पर एक कौड़ी भी व्यय नहीं की जाती। परिणाम यह हो रहा है कि थोड़ा कर लेने पर भी हमारी बचत में वृद्धि ही हो रही है।

"हमारे राज्य में बनी वस्तु दूसरे राज्यों में सस्ती बिकती है। इसमें कारण यह है कि हम बनाने वाली वस्तु पर कोई कर नहीं लेते। इसलिए हमारे राज्य के व्यापारी धन-धान्य से परिपूर्ण हो रहे हैं। जब धन उनके पास आता है तो वह समाज के प्रत्येक वर्ग में वितरित होता है। ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा मिलती है, शूद्रों को अच्छा वेतन मिलता है और राज्य को कर मिलता है।"

"सेना की क्या स्थिति है?"

"हमने दो लक्ष सुभट्ट शस्त्रास्त्र से सुसज्जित कर रखे हैं। ये सब राज्य की रक्षा करते हैं और यहां पर न्याय तथा शान्ति स्थापित करने में सफल हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त हमने एक लक्ष युवकों को सैनिक शिक्षा देकर अपने-अपने काम पर भेजा है। ऐसे सैनिक तो हम प्रतिमास तैयार कर रहे हैं।"

"कृष्ण जी का मत है कि हमारा कौरवों से युद्ध होगा। परन्तु यह तैयारी युद्ध के लिए नहीं है, प्रत्युत एकाएक आक्रमण को रोकने के लिए है।"

मैं इस सब समाचार को सुनकर बहुत प्रसन्न था। मुझे दुर्योधन के मन की बात कि राज्य के धनाभाव को समर से पूरा किया जाय, स्मरण हो आयी थी।

इस प्रकार कुछ दिन इन्द्रप्रस्थ में रुककर मैं हस्तिनापुर लौट गया। विदा होते समय युधिष्ठिर ने हमें विदाई के रूप में वस्त्र आभूषण एवं स्वर्ण मुद्राएं दीं।

: 3 :

मैंने इन्द्रप्रस्थ का पूर्ण वृत्तान्त महाराज धृतराष्ट्र के सम्मुख दुर्योधन को बताया। मैंने अपने को मिली विदाई का भी उल्लेख किया। यह सब वृत्तान्त दुर्योधन के लिए प्रसन्नता का सूचक नहीं था। जब मैंने बताया कि नगर के चारों ओर एक सुदृढ़ प्राचीर बनी हुई है ओर उस पर दस सहस्र सैनिक दिन-रात नगर के रक्षार्थ नियुक्त हैं वैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल सैन्यबल तीन लक्ष सैनिकों का है, सुनकर तो दुर्योधन का मुख मलिन पड़ गया।

दुर्योधन के मुख से, वृत्तान्त सुनते ही, ये शब्द निकले, "तो इन्द्रप्रस्थ पर आक्रमण करन सुगम नहीं?"

मैंने पूछ लिया, "तो क्या आपने मुझको वहां यह जानने के लिए भेजा था कि वहां पर आक्रमण हो सकता है अथवा नहीं?"

"और आप किसलिये गये थे?"

"मैं तो यह समझा था कि आप उस राज्य की आर्थिक उन्नति के विषय में जानना चाहते हैं।"

"उसके जानने से क्या होगा? हमारा यह पुराना राज्य वैसी आर्थिक नीति का अवलम्बन नहीं कर सकता, जैसा कि वह नवीन राज्य कर सकता है।"

मेरी यह धारणा कि अब कदाचित् कौरव शान्त रहेंगे भ्रमपूर्ण सिद्ध हुई।

इसके कुछ काल पश्चात् दुर्योधन ने भारत-नरेशों से दशांश-कर जो, चक्रवर्ती राज्य होने के कारण कुरुवंश अपना अधिकार मानता था, मांगना आरम्भ कर दिया। कई दुर्बल नरेशों से वह कर अभी आता था, परन्तु अधिकतर नरेशों ने देने से इनकार कर दिया था।

इनकार करने वाले नरेशों में द्रुपद सबसे प्रथम था। धृष्टद्युम्न ने एक अति कड़ा पत्र लिखकर भेजा। उसने लिखा, "न तो नैतिकता के नाते, न ही शक्ति के कारण कौरव राज्य-चक्रवर्ती राज्य है। हम आपको अपना नेता नहीं मानते।

"जो अपने भाईयों को जीवित जला देने का दुःसाहस कर सकता है, वह अन्य राजाओं की रक्षा क्या कर सकेगा?"

इस प्रकार के उत्तर चारों ओर से आने आरम्भ हो गये। स्थानेश्वर राज्य से भी कर मांगा गया, परन्तु उसने भी इनकार कर दिया। इस पर दुःशासन को सेना देकर उससे कर प्राप्त करने के लिए भेज दिया गया।

जैसा कि मैं आशा करता था, स्थानेश्वर से पांच कोस इधर ही स्थानेश्वर की सेना से युद्ध हुआ और दुःशासन अपनी बहुत-सी सेना की आहुति दे लौट आया।

इन लक्षणों को देख मेरा अनुमान यह था कि इस समय यदि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करे तो वह सफल हो जाएगा। परन्तु वह अर्जुन के बिना यज्ञ नहीं कर सकता था।

इस पर भी मेरे मन में यह विचार उठा कि राजसूय यज्ञ तो होगा ही। उसकी तैयारी में किसी को पहले देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में जाकर वहां की वास्तविक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इस विषय में युधिष्ठिर के किसी दूत के जाने से तो कृत्रिम व्यवहार भी स्वीकार किया जा सकता था।

अतः मैंने स्वयं जाने का विचार बना लिया। मैंने तीर्थाटन का बहाना कर, भिन्न-भिन्न राज्यों में जाकर कौरवों और पांडवों के विषय में उनके मन की भावनाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जानने का निश्चय कर लिया।

मैंने अपना भ्रमण देवलोक से ही आरम्भ किया। वहां से हिमाचल क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए गंगा द्वार और वहां से इन्द्रप्रस्थ, स्थानेश्वर, ब्रह्मवर्त, बहनीक की ओर से होता हुआ दक्षिण से पूर्वांचल के तीर्थों और राज्यों में भ्रमण करता हुआ चला जा रहा था।

इस भ्रमण में जहां मैं राज्य के नरेशों से मिलता था, वहां जनसाधारण में कथा-कीर्तन भी किया करता था। लोगों से मिलता-जुलता था, उनसे विचार-विनिमय करता था; धर्म का रूप और उसकी महिमा का प्रतिपादन करता रहता था। इस प्रकार मैं देश में एक आन्दोलन चलाने का यत्न कर रहा था।

नरेशों से खुलकर कौरवों और पांडवों के विषय में बातचीत होती थी। वे सब दोनों में वैमनस्य का कारण जानने की इच्छा रखते थे।

मैं प्रभास तीर्थ पर पहुंचा तो वहां कुछ मास ठहरने का विचार बना लिया। यहां मैं अपने एक सहपाठी श्रीपदाचार्य के गृह पर ठहरा। श्रीपदाचार्य की पत्नी सुहृदया मेरी पत्नी उर्मिला से बहुत प्रेम करने लगी थी।

यहां पर भी मैं अपने निश्चित कार्य के अनुसार दिनचर्या बनाये हुए था। एक दिन श्रीपदाचार्य मुझको बताने लगा, "पांडुनन्दन अर्जुन आज प्रभास तीर्थ में पधारे हैं। पहले तो लोगों को पता नहीं चला, परन्तु जब वे पितृ-तर्पण करने लगे तो पुजारी जी को उनके कुल और गोत्र का ज्ञान हो गया। पुजारी पूजा से उठ उनको सादर नमस्कार करने लगा तो आसपास के लोग भी जान गये और अब तो प्रभास में यह बात सर्वत्र फैल गई है और लोग झुंड के झुंड उनके दर्शनों को जा रहे हैं।"

मैं मन में विचार करने लगा कि अपने को प्रकट करूं अथवा न। जो कार्य मैं करने जा रहा था वह मैं पांडवों से पृथक् रह कर ही सुचारु रूप से कर सकता था। मेरा किसी प्रकार से पांडवों से सम्पर्क मेरे उद्देश्य के लिए हानिकर भी हो सकता था।

जनसाधारण में अब अर्जुन के विषय में अनेकों किंवदन्तियां विख्यात हो चुकी थीं। जहां मैं अर्जुन की धनुर्विद्या के विषय में बताता था, वहां लोग मुझको उसके इस देशाटन में किये कृत्यों को बताते थे।

मुझे पता चला कि अर्जुन ने गंगा द्वार पर ऊलुपी से और मणिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा से विवाह किया है और दोनों स्त्रियों से एक-एक पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं। ऊलुपी का पुत्र उसकी माँ को और चित्रांगदा का पुत्र उसके नाना चित्रवाहन को वह सौंप आये हैं।

इनके अतिरिक्त भी अर्जुन के अनेकों शौर्य के कामों का उल्लेख जनसाधारण में विख्यात हो रहा था। मुझे यह सब सुनकर सन्तोष ही हुआ था। ये सब बातें पांडवों के चक्रवर्ती राजा होने में सहायक होने वाली थीं।

प्रभास तीर्थ गुर्जर राज्यांतर्गत था। अर्जुन के यहां आने का समाचार द्वारिका में पहुंचा। कृष्ण यह समाचार पा स्वयं प्रभास आ गये और अर्जुन को अति आदर सहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारिका जी को ले गये।

मैं भी उर्मिला को प्रभास में उसकी सखी के पास छोड़ स्वयं द्वारिका जा पहुंचा। द्वारिका से पूर्ण नगर अर्जुन की सवारी देखने के लिए राजपथ पर उमड़ पड़ा था। वहां के जानकार व्यक्तियों का कहना था कि यह स्वागत अभूतपूर्व था। इस स्वागत का जन-साधारण के मन पर भारी प्रभाव पड़ा। प्रायः वहां के हर वर्ग के लोग अर्जुन और पांडवों के प्रति सहानुभूति तथा प्रेम अनुभव करने लगे थे। अर्जुन के गृह से बाहर रहने की अवधि में अभी दो वर्ष से ऊपर थे। इस कारण कृष्ण का आग्रह था कि वह द्वारिका में ही शेष समय व्यतीत करे। परन्तु अर्जुन का चंचल-मन एक ही स्थान पर रहने को नहीं था। इस पर भी वह वहां अनिश्चित काल के लिए ठहरा हुआ था।

उन दिनों द्वारिका की शोभा उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। यह नगरी मध्य भारत में और समुद्रवर्ती नगरों में एक विशेष महत्त्व रखती थी। बहुत लम्बे-लम्बे और चौड़े पथ थे। इन पथों के दोनों ओर कई-कई छतों की अट्टालिकाएं थीं। सुन्दर, भव्य मन्दिर और विशाल प्रासादों की यह नगरी अति शोभायमान हो रही थी।

एक दिन मैं धर्मशाला में, प्राचीन काल के इतिहास की कथा कर रहा था कि श्री कृष्ण वहां आ पहुंचे। वे आये तो वहां बैठे श्रोतागणों ने उनके लिए मुझ तक आने का मार्ग छोड़ दिया। वे कदाचित् चुपचाप पीछे बैठ मेरी कथा सुनते, परन्तु इस प्रकार लोगों से पहचाने जाने से तथा उनके मार्ग छोड़ने ने उनको विवश कर दिया कि वे मेरे पास आकर बैठ जायें।

श्री कृष्ण मुझको अपने प्रासाद में ले गये। वहां प्रासाद के एक अति सुसज्जित आगार में ले जाकर कहने लगे, "तात! यह लोटा-डोरी यहां रख दें। अब कुछ दिन तक आपको यहां ही रहना पड़ेगा। आप कुछ दिन यहां विराजिए और अपनी कथा-कीर्तन कर हमें कृतार्थ कीजिये। आज ही काकी भी प्रभास तीर्थ से यहां आ जायेंगी। उनके लिए रथ यहां से भेज दिया जाएगा।"

मैं मान गया। प्रति सायंकाल राज्यप्रासाद के मुख्य प्रांगण में कथा और धर्म चर्चा होने लगी। इसमें राज्य-परिवार के सभी मुख्य-मुख्य सदस्य भी सम्मिलित होते थे।

: 4 :

इस समय एक अन्य घटना घटी। एक दिन पूर्ण राजप्रासाद में भारी हलचल मच गयी। मैं इस पर आश्चर्य कर रहा था कि हमारे आगार में महारानी रुक्मिणी आई और पूछने लगी, "तात्! आज कथा सुनने कोई नहीं आया?"

"नहीं महारानी जी! क्या बात है? कुछ कहीं अशुभ हो गया है क्या?"

"अभी कहा नहीं जा सकता कि शुभ हुआ है, अथवा अशुभ। इस पर भी सर्वथा अप्रत्याशित है।"

"क्या हुआ है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं और उर्मिला खड़े हो गये थे। मैंने महारानी को बैठने का आसन दिया, परन्तु वह बैठी नहीं। अतएव हमें भी खड़े ही रहना पड़ा। मैंने पूछ लिया, "क्या वह बात बताने योग्य नहीं है?"

"अब तो सबको पता चल गयी है। आपको भी पता चल जायेगी। सुभद्रा का अपहरण हो गया है।"

"सत्य? किसने किया है?...

"अर्जुन ने, परिवार के सब लोग सभा भवन में एकत्रित हो विचार कर रहे हैं कि इस परिस्थिति में क्या किया जाये?

"आज मध्याह्न भोजनोपरान्त सुभद्रा रैवतक पर्वत पर भ्रमणार्थ गयी थी। वहां अर्जुन ने उसको देखा और उसको अपने रथ में बैठाकर चल दिया। सुभद्रा के साथ गयी सखियों और दासियों ने यह सूचना दी है। इस पर सभाभवन में विचार हो रहा है।

मुझे अर्जुन की यह दुष्टता प्रतीत हुई। मैं अपने आगार में खिड़की के पास खड़ा हो, सभा-भवन की ओर देखने लगा। सभा-भवन का द्वार वहां से दिखाई देता था। रुक्मिणी तो कथा सुनने के लिए आ न सकने पर क्षमा-याचना करने के लिए ही आयी थी। वह चली गयी। मैं और, उर्मिला सभा-भवन में हो रही पांडवों और अर्जुन की निन्दा की कल्पना करते हुए उसके द्वार पर देख रहे थे।

हमें देखते हुए अभी कुछ काल ही हुआ था कि सभा-भवन में से राज्य-परिवार के प्रमुख व्यक्ति शान्त भाव से निकले और अपने-अपने आगारों को चल दिये।

सबसे अन्त में कृष्ण निकला और निकलते ही अपने रथ में सवार हो राज-प्रासाद के बाहर को चला गया। मैं इसका अर्थ समझ नहीं सका। मैंने उर्मिला को रुक्मिणी के आगार में जाकर समाचार जानने के विषय में कहा।

रुक्मिणी देवकी के कक्ष में थी। उर्मिला वहां पहुंची। जब वह वहां गयी तो देवकी ने बता दिया, "वंश के सब लोग अर्जुन का पीछा कर उससे युद्ध कर सुभद्रा को वापस लाने के पक्ष में थे। परन्तु कृष्ण ने उनको मना कर दिया है। कृष्ण का कहना है कि उसको अर्जुन पर विश्वास है कि उसने ये अपहरण नहीं किया। यह अवश्य सुभद्रा की अनुमति से विवाह का निश्चय है।"

इस पर निर्णय हुआ कि कृष्ण अर्जुन को जाकर वापस ले आयें; सुभद्रा और अर्जुन दोनों आयें और कृष्ण की माँ के सामने पृथक्-प्रथक् अपने मन के भाव बतायें। यदि कृष्ण का अनुमान ठीक है तो दोनों का विधिपूर्वक विवाह कर दिया जाये।

अब कृष्ण अर्जुन को ढूँढ़ने गया है। कृष्ण का अनुमान है कि पुष्करराज की ओर वे भागे हैं। आज रात को वे जहां भी ठहरेंगे, वहां वह उनको पकड़ सकेगा।

इस सब समाचार से मेरा समाधान नहीं हुआ। मुझको भय था कि कहीं अर्जुन कृष्ण की परस्पर ठन गयी तो भारी अनिष्ट होगा। भारत में जो कुछ धर्म का उत्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रहा है, वह सब मिट्टी में मिल जायेगा।

रात-भर मैं विचार में लीन रहा। अगले दिन बहुत प्रातःकाल ही प्रासाद के आँगन में रथों के आने की गड़-गड़ाहट हुई। मैं उठकर आगार की खिड़की से देखने लगा। दो रथ थे, एक में कृष्ण और सुभद्रा थे, दूसरे में अर्जुन था।

अर्जुन अपने कक्ष में चला गया और सुभद्रा तथा कृष्ण अपने माता-पिता के कक्ष में चले गये।

मैं अपने आगार से निकल अर्जुन के आगार के बाहर जा खड़ा हुआ। अर्जुन आया और मेरे समीप आ मेरी ओर मुस्करा कर देखने लगा। कुछ विचार कर उसने कहा—"तात्! आइये।"

मैं उसके साथ उसके आगार में चला गया। अर्जुन जब आसन पर बैठ गया तो मैंने खड़े-खड़े ही पूछ लिया, "कुमार! यह सब कैसे हो गया?"

"यह सब एक योजनानुसार था और आज वह योजना पूर्णता को पहुंच जायेगी।"

"यह योजना केवल आपकी ही थी अथवा इसमें कोई अन्य भी सम्मिलित था?"

वह हंस पड़ा। हंसते हुए उसने कहा, "आप क्या समझते हैं, यह सुन्दर रथ मुझको कहां से मिल गया? रैवतक प्र पहरा लगा था। यदि सुभद्रा हल्ला करती तो वहां के लोग मुझको पत्थर मार-मारकर यमलोक पहुंचा देते। मैंने सुभद्रा को कहा, 'देवी चलो!' तो वह अपनी सखियों को छोड़ मेरे रथ के समीप आ खड़ी हुई, मैंने उसको रथ पर चढ़ने का संकेत किया तो वह बोली, 'उठा कर रथ में बैठा दीजिये।' इससे उसकी सखियां समझीं कि मैंने अपहरण किया है।"

मैंने कहा, "परन्तु कुमार! श्रीकृष्ण से राय कर लेते तो यह सब नाटक करने की आवश्यकता नहीं रहती। वे जो स्वयंवर में से रुक्मिणी को उठा लाये थे, आपका सुभद्रा को वरना बुरा न मानते।"

अर्जुन ने हंसकर कहा, "तात्! सब उनकी तथा युधिष्ठिर महाराज की अनुमति से हुआ है। मैंने सुभद्रा देवी को प्रभास में देखा था और तभी से मैं उसको पत्नी बनाने की चिन्ता कर रहा था। पहले मैंने सुभद्रा की अनुमति मांगी। मुझको यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि वह तो पहले ही मुझ पर मोहित थी। उसका विचार था कि उसके माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धी यह विवाह पसन्द नहीं करेंगे। मैंने अपने मन के भाव कृष्ण से कहे। उनकी स्वीकृति मिल गयी। उनका भी यही विचार था कि सुभद्रा का अपहरण करना पड़ेगा। वे भी यह समझते थे कि उनके माता-पिता स्वेच्छा से यह विवाह नहीं मानेंगे।

"अतः मैंने अपने विचार युधिष्ठिर जी को लिख दिये। कल उनकी अनुमति आई कि कृष्ण की सम्मति से काम करो। इस कारण कृष्ण नें नियत स्थान पर मुझको मिलना ही था और मेरा विवाह सुभद्रा से वहां ही होना था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''योजना में अन्तर यह आया है कि कृष्ण ने अपने सब सम्बन्धीजनों को इस विवाह के लिये राजी भी कर लिया है।''

अगले दिन अर्जुन और सुभद्रा का विवाह हुआ। पूर्ण नगर में इस की धूम-धाम रही। बहुत से भूषण, वस्त्र, रथ और अश्व दहेज में सुभद्रा को दिये गये। द्वारिका के दूसरे वंश के लोगों ने भी सुभद्रा को नाना प्रकार की वस्तुएं भेंट में दीं।

मैं अभी द्वारिका में ही था कि अर्जुन सुभद्रा को लेकर वहां से विदा हो गया। अर्जुन का विचार था कि वह पुष्करराज में दो वर्ष तक रहकर अपने घर से बाहर रहने की अवधि पूरी करेगा। वहां से वह हस्तिनापुर जायेगा।

: 5 :

सम्पूर्ण देश घूमने के उपरान्त मैं इस निर्णय पर पहुंचा था कि पांडवों को देश के सभी राजाओं को एक सूत्र में बांधने के लिये तथा उनको अपने साथ रखने के लिये राजसूय यज्ञ करना चाहिये। इस यज्ञ की सफलता के बाद तो पांडव अजेय हो जाएंगे।

अतः तीर्थाटन को समाप्त करने से पूर्व मैं इन्द्रप्रस्थ में जा पहुंचा। कृष्ण भी यहां आये हुए थे।

मैं जब वहां पहुंचा तो मुझे भी राजप्रासाद में ठहरा दिया गया। वहां पर रहते हुए मुझे विदित हुआ कि इन्द्रप्रस्थ के समीप का खाण्डव वन जला कर भस्म कर दिया गया है। जलाने वाले थे अर्जुन और श्रीकृष्ण। यूं तो खाण्डव वन असुर, दानवों और अन्य डाकुओं का आश्रय स्थान था। परन्तु उनको वन से निकालने के स्थान, वन को ही जला देने के समाचार से मुझको विस्मय हुआ था।

देश में गहन वनों की आवश्यकता रहती है। इनसे समय पर वर्षा होने में सहायता मिलती है। अतः इस वन के विनाश से मुझको आश्चर्य हुआ। मैं समझ नहीं सका कि इस वन को जलाने की क्या आवश्यता थी।

राजप्रासाद में मेरी भेंट मयासुर से हो गई जो इस वन से बचकर निकला था। उसने बताया, ''यह वन पाण्डवों के विरुद्ध भारी षड्यन्त्र का गढ़ बन गया था।

''लगभग पचास हजार नाग सैनिक इस वन में एकत्रित हो चुके थे। यह सब तैयारी चोरी-चोरी की गई थी, परन्तु एक ब्राह्मण घटनावश वन में तपस्या करने आ पहुंचा और उसे सन्देह हो गया। उसने अर्जुन से इस सन्देह का वर्णन किया। श्री कृष्ण भी इन दिनों यहां आए हुए थे।

''बस फिर क्या था! श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र और अर्जुन ने आग्नेय वाणों से सम्पूर्ण वन को भस्म कर दिया। सभी नाग सैनिक मार डाले गये। तक्षक कार्यवश वन से बाहर थे। वह बच गये और मैं भागता हुआ पकड़ लिया गया।

''मुझे भी अर्जुन मार डालना चाहते थे परन्तु मेरे क्षमा माँगने पर तथा एक चतुर शिल्पी होने के कारण मुझे जीवन-दान दिया गया। मैंने महाराज युधिष्ठिर के लिए एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन प्रासाद जिसका जोड़ संसारभर में कहीं नहीं होगा बनाकर देने का आश्वासन दिया है।''

एक दिन जब पांडव और श्रीकृष्ण बैठे थे, तो मैंने बात चला दी। मैंने कहा, ''महाराज! मैं सात वर्ष भारत में भ्रमण के पश्चात् यह अनुभव प्राप्त कर आया हूं कि भारत में चक्रवर्ती राज्य का स्थान रिक्त पड़ा है। मैं श्रीमान् से निवेदन करना चाहता हूं कि आप यह पद पाने योग्य हैं।''

इस पर सब गम्भीर हो गये। उत्तर कृष्ण ने दिया। उसने कहा, ''जब तक जरासंघ और शिशुपाल जीवित हैं, यह राजसूय-यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सकता। दोनों के शैन्य इतने बलशाली हैं कि इनको परास्त करने के लिए युक्ति से काम लेना होगा। राजसूय-यज्ञ के समय तो छल-कपट चल नहीं सकेगा। इस कारण इनका विध्वंस पहले ही कर देना होगा।

''युधिष्ठिर! यदि तुम, तुम्हारे भाई, सम्बन्धी तथा मित्र तुम्हारे इस कार्य में सहयोग देने को तैयार हों तो, निःसन्देह, यह कार्य करने योग्य है।''

''कृष्ण भैया! तुम इसमें क्या सम्मति देते हो? मेरी जानकारी में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं, जो उचित सम्मति दे सके।''

''तो सुनो!'' कृष्ण ने सर्तक हो देश-विदेश की परिस्थिति का वर्णन कर दिया। उसने कहा—

''महाराज द्रुपद, राजकुमार धृष्टद्युम्न, मैं, बलराम तथा भोजवंशीय राजा, मन से तुम्हारे सहायक हैं। परन्तु इसके विपरीत बहुत से तुम्हारे विरोधी भी हैं।

''कौरव तुम्हारे इस यज्ञ-कार्य को पसन्द नहीं करेंगे। परन्तु तुम्हारे खांडव वन को भस्म करने से तुम्हारी शक्ति का अनुमान लगा, वे तुम्हारा विरोध भी नहीं करेंगे।

''कंस जरासंध का दामाद था। जरासंध की दो लड़कियां अस्ति और प्राप्ति का उससे विवाह हुआ था। जब हमने कंस और सुनामा को मार डाला तो जरासंध हमसे कुपित हो गया।

''जरासंध अत्यन्त बलशाली है। सैकड़ों राजा और राजकुमार इसके बन्दीगृह में पड़े हैं। उस पर आक्रमण कर उसको परास्त करना कठिन है। इसके लिये भयंकर युद्ध करना पड़ेगा और व्यर्थ नररक्त बहेगा। परन्तु इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। कारण यह कि हम इसके साथ मल्ल युद्ध कर इसको परास्त कर सकते हैं। परन्तु वह मल्ल युद्ध के लिए आसानी से तैयार नहीं होगा। इसके लिए चतुराई की आवश्यकता होगी।

''राजन्! मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि जरासंध शूरवीर, बलशाली तथा विशाल सेना का स्वामी है। इस पर भी वह बुद्धि में दुर्बल है। इसके सैनिक भी बुद्धि में न्यूनता रखते हैं। अतः हमको इस छिद्र को जानकर ही उसका नाश करना चाहिए।

''मैं, भीम और अर्जुन को लेकर उसको मल्ल-युद्ध की चुनौती देता हूं। वह अवश्य ही हममें से किसी एक के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो जायेगा। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा हुआ तो उसका सर्वनाश समझो।

"और जरासंध को परास्त करने के बाद किसी भी राजा की हिम्मत नहीं होगी कि आपका विरोध करे।"

युधिष्ठिर ने इस प्रकार के वचन सुन उनको अनुमति दे दी कि वे जरासंध को मारकर लोक-कल्याण करे।

इस प्रकार वे तीनों वीर मगध राज्य को चल पड़े। वे ब्राह्मण के वेश में गये। मगध राज्य की राजधानी गिरिव्रज के बाहर पहुंच विचार करने लगे कि क्या करें।

गिरिव्रज एक पर्वत के शिखर पर बनी नगरी थी। नगरी के चारों ओर सुदृढ़ प्राचीर बनी थी। प्राचीर में पांच द्वार थे और पांचों के पांचों सैनिकों द्वारा भलीभांति सुरक्षित थे। नगर में कोई भी बाहरी व्यक्ति बिना जरासंध की अनुमति के, प्रवेश नहीं पा सकता था।

कृष्ण ने यह विचार किया कि नगर में जाने पर तो नाम-धाम बताना पड़ेगा और असत्य नाम आदि बताना उचित नहीं होगा। अतः उन्होंने नगर-प्राचीर के एक पुराने परकोटे को फोड़ कर भीतर जाने का विचार बनाया। यहां प्रहरी नहीं थे। इस परकोटे की छत पर तीन नगारे रखे हुए थे, अवांछित लोगों के प्रवेश पर स्वयं ही बजने लगते थे। इनके बजते ही सैनिक आ जाते थे।

कृष्ण, भीम और अर्जुन इस परकोट की छत पर चढ़ गये। उन नगारों को जाते ही उन्होंने फोड़ डाला और परकोट की दीवार को धक्के मार-मार कर तोड़ डाला। इस प्रकार नगर में जाने का मार्ग बना वे अन्दर चले गये।

नगर मार्ग पर स्नातक व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मणों के भेष में और अस्त्र-शस्त्र से रहित वे चलते हुए राज-प्रसाद के द्वार पर जा पहुंचे।

वहां द्वारपाल के द्वारा कृष्ण ने जरासंध को यह सूचना भेजी कि तीन ब्राह्मण महाराज से विशेष भिक्षा पाने की आशा से आये हैं।

तीनों को प्रासाद के भीतर ले जाकर महाराज जरासंध के सम्मुख खड़ा कर दिया गया। जरासंध ने इन ओजस्वी ब्राह्मणों को देख आसन से उठकर इनका स्वागत किया और पूछ लिया, "महाराज! आप कहां से पधारे हैं और क्या चाहते हैं?"

उत्तर कृष्ण ने दिया। उसने कहा, "ये दोनों तपस्वी स्नातक आप से एक याचना करने के लिए आये हैं। परन्तु मध्यरात्रि से पूर्व ये कुछ न बोलने का व्रत लिये हुए हैं। अतः हमें यहां ठहरने का स्थान दीजिए और मध्य रात्रि के समय दर्शन देकर हमें कृतार्थ करिये।"

ऐसा ही किया गया। मध्य रात्रि के समय जरासंध आया और उसने कहा, "हे छद्मवेशी ब्राह्मणों! अपना पूर्ण परिचय दो और अपने आने का कारण बताओ।

"यह मैं जान चुका हूं कि तुम तीनों अकेले, शस्त्रास्त्र के बिना यहां आये हो। इस कारण चिन्ता न करते हुए मैं तुम्हारा नाम, धाम और काम जानना चाहता हूं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण ने अब अपने को छिपाकर रखना व्यर्थ समझ कहा, "हम वेश में तो स्नातक ही हैं। वैसे हमारा क्षत्रिय होना स्नातक होने का विरोध नहीं करता। हम बलशाली भी हैं। यह बात तुमको परकोटे की दीवार के टूट जाने से विदित हो चुकी होगी।

"हम द्वार से नहीं आये। इसमें कारण है कि मित्र के घर तो द्वार से जाया जाता है। हम आपके मित्र नहीं हैं। हमने तुम्हारी पूजा भी ग्रहण नहीं की। पूजा शत्रु के घर से ग्रहण नहीं की जाती।"

"परन्तु तुम हो कौन? मैंने तुम्हारे साथ कौन-सी शत्रुता की है?"

"मैं द्वारिकाधीश वसुदेव का पुत्र कृष्ण हूं। ये दोनों पांडुपुत्र भीम और अर्जुन हैं।

"तुमने देश-भर के क्षत्रियों के साथ अत्याचार किया है। दुष्ट कंस से, जिसने अपनी बहन और बहनोई को बन्दी बना रखा था, न केवल अपनी लड़कियां विवाहीं अपितु समय-समय पर उसकी सहायता भी की है। कंस को उसकी दुष्टता का फल मिलने के पश्चात् तुमने मथुरा पर सत्रह बार आक्रमण किये। तुमने अपने सैन्यबल से भारत के अनेक राजाओं को बन्दी बना रखा है। सुना जाता है कि तुम उन सबको भगवान् त्र्यम्बक के समक्ष बलि चढ़ाने का विचार रखते हो।

"साधु लोग तुम्हारे अत्याचार से हा-हाकार कर रहे हैं। दुष्ट तुम्हारे संरक्षण में फल-फूल रहे हैं। ऐसा तुम्हारा अधर्माचरण देख महाराज युधिष्ठिर ने हमें तुमसे युद्ध करने के लिए भेजा है। अतः बताओ, हममें से किसके साथ युद्ध करोगे?"

"तो यह युद्ध टल नहीं सकता?" जरासंध ने मुस्कराते हुए पूछा।

"टल सकता है," श्रीकृष्ण का सतर्क उत्तर था, "यदि तुम उन नरेशों को जिनको तुमने नर-बलि के लिये बन्दी बना रखा है, तुरन्त छोड़ दो। उन सब अर्धाचरण करने वालों से, जो प्रजा पर अत्याचार करते हैं, सम्बन्ध-विच्छेद कर लो और धर्मानुयायियों के साथ सम्बन्ध बना लो।"

"देखो कृष्ण!" जरासंध ने कुछ अकड़ कर कहा, "मैंने जो कुछ किया है, धर्मानुकूल किया है। क्षत्रिय महाराजाओं का यह धर्म है कि बल से हीन दुर्वलों पर अपना राज्य स्थापित करें। जो अधीन होना स्वीकार न करें, उनको मौत के घाट उतार दें। अधीन प्रजा से कर प्राप्त करें। यदि प्रजागण कर ने दे सकें तो उनकी सम्पत्ति आदि को छीन लें। मैंने भी यही कुछ किया है।"

"ऐसा नहीं जरासंध! क्षत्रियों का वल अकारण विजय करने के लिए नहीं है। जो अधर्मी हैं, जो न्याय और परोपकार का जीवन व्यतीत नहीं करते, उनको ही परास्त कर अपने अधीन करना राजा का कर्त्तव्य है, प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म है, न कि उसकी धन-सम्पत्ति छीन लेना।

"तुम तो कंस-जैसे अन्यायी और अपनी बहिन के नवजात शिशुओं की हत्या कर देने वाले आततायी के सहयोगी और सहायक बन गये थे। तुम अधर्मी हो। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम तुमसे युद्ध करने के लिए आये हैं।"

"तो बताओ तुम किस प्रकार युद्ध करोगे? तुम्हारे पास अस्त्र-शस्त्र तो है नहीं।"

"हम तुम से मल्ल-युद्ध करेंगे। एक का एक से ही युद्ध होगा। तुम बताओ, हम तीनों में से किसके साथ युद्ध करना चाहते हो?"

जरासंध ने तीनों को देखा और कहा, "मैं भीम से लड़ूंगा। यह तुम में सबसे बलवान् प्रतीत होता है। मैंने महाराज द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर पर इसके शौर्य पूर्ण कार्य को सुना है। अतः मैं इससे मल्ल-युद्ध करूंगा। क्योंकि किसी ख्याति-प्राप्त योद्धा से युद्ध करने पर विजय होने से यश मिलता है। तुम दुर्बलों को मारकर भला क्या कीर्ति मिलने वाली है।"

यही तो कृष्ण चाहता था। अतः दोनों में मल्ल-युद्ध आरम्भ हो गया। वहीं यज्ञ-शाला के प्रांगण में, जहां उन स्नातकों को ठहराया गया था, दोनों लंगोटे कस निकल आये और युद्ध होने लगा।

इस युद्ध का समाचार सुन राज-प्रासाद के रहने वाले और पुरवासी भारी संख्या में युद्ध देखने वहां आ पहुंचे। युद्ध निरन्तर तेरह दिन तक चलता रहा। तेरह दिन के संघर्ष के बाद जरासंध का बल क्षीण होता दिखाई देने लगा। इस समय कृष्ण ने एक नर-कट हाथ में लेकर उसको लम्बाई में चीर डाला और युद्ध करते हुए भीम को संकेत किया।

भीम कृष्ण का संकेत समझ गया। उसने इस बार जरासंध को भूमि पर पटक, उसकी एक टाँग पर अपना पाँव रखा और दूसरी टांग पकड़ कर ऊपर को खींच ली और उसके दो टुकड़े कर दिए।

इस प्रकार जरासंध की मृत्यु हो गई। पहले तो जरासंध के पुत्र ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये युद्ध करने को सेना को बुलाया, परन्तु अर्जुन ने एक सैनिक का धनुष छीन उसकी टंकार की तो वह समझ गया कि जो वीर इस प्रकार सिंह की गुफा में आकर सिंह को मार सकते हैं, वे और भी कुछ कर सकते हैं।

उसने इनसे सन्धि कर ली। भीम तथा अर्जुन का सत्कार किया। उनको बहुत से रत्नादि भेंट किए और कृष्ण के कहने पर सब बन्दी नरेशों को छोड़ दिया।

: 6 :

मैं भी उस समय महाराज युधिष्ठिर के समीप बैठा था जब कृष्ण ने उक्त विवरण महाराज युधिष्ठिर को सविस्तार सुनाया। कृष्ण का कहना था, "अब समय है कि राजसूय-यज्ञ करने की घोषणा कर दी जाये। यह घोषणा महर्षि व्यासजी के द्वारा कराई जाये और वे ही इस यज्ञ को भी पूर्ण करायें। इसमें प्रयोजन यह है कि दुर्योधनादि इसमें कोई झगड़ा खड़ा न कर सकें।"

जब व्यासजी को बुलाने के लिए राजदूत गया, तब कृष्ण ने मुझे हस्तिनापुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाकर धृतराष्ट्र और भीष्मजी को इस यज्ञ की योजना के अनुकूल करने के लिए कहा।

मैं हस्तिनापुर महाराज धृतराष्ट्र से मिलने जा पहुंचा।

युधिष्ठिर के चारों भाई चारों दिशाओं में दिग्विजय के लिए इन्द्रप्रस्थ से निकल चुके थे।

अर्जुन उत्तर दिशा में कुलिंद, कालकूट, आनर्त, शकल द्वीप, प्रतिबिन्ध, प्राग्ज्योतिषपुर, किरात, चीन, यवनदेश, अन्त-गिरि इत्यादि उत्तर-सागर के तट तक के देशों से भारी कर लेकर लौटा।

भीम पूर्व दिशा में गया, वहां के समस्त राजाओं को परास्त कर उनसे कर लेकर वापस आ पहुंचा।

सहदेव दक्षिण और नकुल पश्चिम् दिशा के प्रायः सब राज्यों को अधीन कर लौटे थे। इस सार्वभौमिक विजय में जहां जरासंध की मृत्यु का हाथ था, वहां युधिष्ठिर की धर्म-परायणता और ख्याति ने भी कार्य सुगम कर दिया था। इसमें मेरा भ्रमण भी कुछ सीमा तक सहायक रहा था।

इस प्रकार दिग्विजय के पश्चात् यज्ञ की तिथियाँ निश्चित कर, दूतों द्वारा सब नरेशों को निमंत्रण भेज दिये गये। निश्चित तिथि से पूर्व ही चारों दिशाओं से चारों वर्णों के लोग इन्द्रप्रस्थ में आने आरम्भ हो गये।

पितामह, आचार्य और धृतराष्ट्र को निमन्त्रण देने के लिए युधिष्ठिर स्वयं हस्तिनापुर आया। उसके आने से वृद्धजन अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार सबको उसने निमंत्रण दिया।

युधिष्ठिर के यज्ञ में सबसे पहले कृष्ण आये। कृष्ण के साथ पूर्ण वृष्णि-वंश के मुख्य-मुख्य व्यक्ति भी पधारे थे। ये सब महाराज युधिष्ठिर के लिए नाना प्रकार के रत्न तथा बहुत-सा धन भेंट देने के लिये लाये। भूमण्डल की चारों दिशाओं से कर-प्राप्ति के कारण युधिष्ठिर का कोष अपार धन-राशि से भर गया था। जब राजा-महाराजा आये तो भेंट-रूप में और भी स्वर्ण तथा अपने-अपने देश की अद्भुत वस्तुएं लेकर आये।

श्रीकृष्ण के पश्चात् व्यासजी अपने साथ बहुत से ऋषियों को लेकर आये। व्यासजी के आने पर यज्ञ का कार्य आरम्भ हुआ। उन्होंने आते ही यज्ञ में ब्रह्मा का कार्य सम्भाला।

व्यासजी ने युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा दी तो कार्य आरम्भ हो गया। दीक्षा के पश्चात् युधिष्ठिर सहस्रों ब्राह्मणों के साथ यज्ञमण्डप में गये। ब्राह्मणों के पीछे-पीछे युधिष्ठिर के सगे भाई, जाति भाई, बन्धु, सहायक, देश-विदेश से आये हुए क्षत्रिय-नरेश तथा मन्त्रीगण यज्ञमण्डप में पहुंचे।

अभ्यागतों तथा विद्वान् ब्राह्मणों से युधिष्ठिर का सभाभवन खचाखच भर गया था। जब सब आ गये तो छः अग्नियों की स्थापना हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदुर जी से यह कह दिया गया कि कोई भी ब्राह्मण धन-धान्य से तृप्त हुए बिना न लौटे। दुःशासन को यह आज्ञा थी कि चारों वर्ण के लोगों को पेट भरकर खाना मिले।

यज्ञ आरम्भ करने से पूर्व यह निश्चय करना था कि यज्ञ में अग्र पूजा किसकी हो। भीष्मजी का विचार था कि इस कार्य के लिए हर प्रकार से योग्य श्रीकृष्ण ही हैं।

जब भगवान् पद प्राप्त श्रीकृष्ण सभापति के आसन पर आकर बैठे तो युधिष्ठिर उठकर आगे आये। उन्होंने श्रीकृष्ण के पाद-प्रक्षालन किये। इस पर चेदिराज शिशुपाल अपने आसन से उठकर सभा-मण्डप में आ गया। वहां खड़ा होकर सभा को सम्बोधन कर वह कहने लगा—

"मैं इस पदवी के लिए कृष्ण की नियुक्ति किये जाने का विरोध करता हूं। पांडवों को यह विदित होना चाहिये कि कृष्ण कहीं का राजा नहीं। द्वारिका में गणराज्य है और गणराज्य के गणपति वसुदेव हैं। कृष्ण वहां पर कुछ भी नहीं है।

"एक साधारण से व्यक्ति को हम सब पर उपमा देकर हमारा अपमान किया जा रहा है।"

इस पर भीष्म जी ने शिशुपाल को समझाया। उन्होंने कहा, "जब-जब भूमि पर दुष्ट प्रकृति के लोगों का बाहुल्य हो जाता है, तब-तब ही भगवान् नारायण अपनी विशेष शक्ति से इस सृष्टि का उद्धार करने के लिये यहां मानव-रूप में जन्म लेते हैं। नरसिंह, परशुराम, वामन इत्यादि कई रूपों में भगवान् की विशेष शक्ति का प्रादुर्भाव होता रहा है।

"चेदिराज! आजकल वही शक्ति श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हो रही है। इसकी अवहेलना मत करो। इसी में लोक-कल्याण निहित है।"

भीष्मजी के यह वाक्य सुन सब राजा चुप कर गये। तत्पश्चात् माद्री कुमार सहदेव ने कहा, "भीष्मजी के उक्त कथन के पश्चात् अब किसी प्रकार का वाद-विवाद नहीं है। पितामह हमारे पूज्य हैं। हम उनकी आज्ञा का ही पालन कर रहे हैं। अब किसी को इस पूजा में आपत्ति नहीं होनी चाहिये।"

उस समय शिशुपाल चुप कर गया।

ऐसा प्रतीत होता था कि उसके चुप रहने में भी कोई रहस्य है। वह बार-बार दुर्योधन का मुख देख रहा था। कदाचित् वह किसी संकेत की आशा कर रहा था। मुझे सन्देह हुआ कि कोई षड्यंत्र न रचा गया हो।

पूजा के उपरान्त शिशुपाल अपने आसन से उठा और कहने लगा, "कुल को कलंकित करने वाले भीष्म! तुम यह अवतारों की कथा बताकर हमें व्यर्थ में भयभीत कर रहे हो।

"तुम स्वयं नपुंसक हो और सबको धोखा देने के लिये बाल-ब्रह्मचारी होने का ढोंग कर रहे हो। नपुंसक और मति-भ्रष्ट के पीछे लग कर ये कौरव भी विनाश को प्राप्त हो रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हे भीष्म! तुमको अपने ज्ञानी होने का बड़ा घमण्ड है, परन्तु तुम वास्तव में मूर्ख हो। इस केशव की स्तुति करते समय तुम्हारी जिह्वा के सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गये?

"तुम धूर्त, धोखेबाज हो और वास्तव में बड़ी आयु के कारण बुद्धि खो चुके हो। तुमने ही यह अनर्थ किया है।"

भीष्म ने इस चुनौती का उत्तर दिया, "शिशुपाल! मैं तुमको अपने सम्मुख किसी प्रकार भी युद्ध के योग्य नहीं समझता। मेरी तुमको यह सम्मति है कि तुम यहां ये चले जाओ। कहीं ऐसा न हो कि तुम इस यज्ञ में आहुति बन जाओ।"

इस पर शिशुपाल ने कृष्ण को गाली देनी आरम्भ कर दी। वह कहने लगा, "ओ अहीर के पुत्र! चोरी-चोरी से पालन किये गये ग्वाले... ।"

इस समय कृष्ण पांव के अंगूठे से अपने सिंहासन के सामने लकीरें खींच रहा था।

शिशुपाल कह रहा था, "ओ कृष्ण! रुक्मिणी का विवाह मुझसे होने वाला था, वह मेरी दत्तक थी। उसको अपनी पत्नी बनाते हुए तुमको लज्जा नहीं आयी? तुम लज्जाहीन हो। तुम दूसरे की पत्नी को घर में रखे हुए हो।"

इस समय कृष्ण अपने आसन से उठा और कहने लगा, "सभ्यगण! शिशुपाल की माता मेरी बुआ है और मैंने उनको एक बार वचन दिया था कि मैं इस दुष्टात्मा के सौ अपराध क्षमा करूंगा। मैं अभी इसके अपराधों की गणना कर रहा था। इस अन्तिम बात से अपराध एक सौ से ऊपर हो गये हैं, अब यह बच नहीं सकता।

"शिशुपाल सावधान!" इतना कह श्रीकृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र निकाला और चला दिया। सुदर्शन चक्र के चलते ही यज्ञमंडप ऐसे प्रकाशमान् हो गया मानो कोई सूर्य का खण्ड वहां पर आ गया हो। पूर्व इसके कि शिशुपाल समझे कि क्या हो रहा है और अगली गाली वह मुख से निकाले, उसका सिर धड़ से पृथक् होकर भूमि पर गिर पड़ा।

जन-साधारण ने साधु-साधु के घोष से श्रीकृष्ण की सराहना की। मैं समझ रहा था कि दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन आदि शिशुपाल की हत्या होते देख हल्ला करेंगे। परन्तु वे सब आँखें नीची किये बैठे रहे। अन्य राजा-महाराजा भी शान्त तथा प्रसन्नचित्त बैठे रहे।

शिशुपाल का शव जहाँ वह ठहरा हुआ था, पहुंचा दिया गया और यज्ञ का कार्य आरम्भ हो गया।

: 7 :

यथा समय यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। सब अभ्यागत विदा होने लगे। युधिष्ठिर ने अपना पूर्ण धन साधु, सन्तों और याचकों में बांट दिया। जो-जो भी कुछ मांगने के लिये आया, झोली भर-भर कर ले गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तिनापुर लौट आने के कुछ ही दिन पश्चात् यह समाचार मिला कि दुर्योधन का स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। विदुरजी उसको देखने गये तो समाचार लाये कि द्वेष और ईर्ष्या की अग्नि में जलते हुए, दुर्योधन क्षीण होता जा रहा है। वह पांडवों का वैभव देखकर आया है। अपने को वैसा वैभव प्राप्त न होते देख उसे डाह हो रहा है।

अगले दिन मैं महाराज धृतराष्ट्र से मिलने के लिये गया और जब मैंने दुर्योधन के स्वास्थ्य के विषय में पूछा तो महाराज ने बताया, "संजय जी! शरीर को कोई कष्ट हो तो चिकित्सा हो भी सकती है। परन्तु जब मन ही रुग्ण हो तो क्या किया जा सकता है?"

"महाराज!" मैंने कहा, "मानसिक रोग की चिकित्सा तो धर्म-विवेक का उपदेश है। किसी साधु-सन्त महात्मा को, इस काम के लिये नियुक्त कर दीजिये।"

"मैंने विदुरजी से कहा है कि वे ही उसको उपदेश देने के योग्य हैं। अतः वे कल गये थे। कदाचित् आज भी जायेंगे।"

मैं अभी वहां बैठा ही था कि दुर्योधन का छोटा भाई, वातवेग, महाराज के पास आया और दुर्योधन के विषय में बताने लगा—

"महाराज! आपने हमको युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का विरोध करने से मना करते हुए एक वचन दिया था।"

"क्या वचन दिया था?" धृतराष्ट्र ने मुख पर चिन्ता प्रकट करते हुए कहा।

"शकुनि मामा ने आपसे कहा था कि धन-बल से प्राप्त वैभव बुद्धि से छीना जा सकता है। इस पर आपने कहा था कि यदि हममें बुद्धि है, तो हम युधिष्ठिर का वैभव छीन सकते हैं।"

"तो तुम्हारे पास वह बुद्धि है?"

"तात्! मेरे पास नहीं, परन्तु मामा शकुनि के पास वह बुद्धि है। आप यदि स्वीकृति दें तो वे उस बुद्धिबल से पांडवों का पूर्ण वैभव हर सकते हैं।"

धृतराष्ट्र और मैं भी वातवेग की बात समझ नहीं सके। मैंने कह दिया, "वातवेग! कुछ व्याख्या से कहो तो समझ में आये।"

"महाराज! आप जानते हैं कि शकुनि मामा द्यूतक्रीड़ा में सिद्ध-हस्त हैं। मामा अपनी इस कला से इन्द्रप्रस्थ का वैभव हस्तिनापुर में ले आना चाहते हैं।"

"तो तुम्हारा अभिप्राय है कि जो तुम लोग बल और बुद्धि से प्राप्त नहीं कर सके, वह छल-कपट से प्राप्त करना चाहते हो?"

"द्यूत-क्रीड़ा छल-कपट कैसे हो गयी? महाराज! यह तो कौशल है, जो मामा को आता है। आदि काल से इसका प्रयोग मनोविनोद के लिए होता रहा है। तनिक दादा को भी कर लेने दें।"

धृतराष्ट्र ने कह दिया, "ठीक है, मैं मनोविनोद के लिये इसकी स्वीकृति देता हूं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं महाराज को समझाना ही चाहता था कि वातवेग उठ पड़ा और जाने से पूर्व उसने कह दिया, "बस इतना ही हम चाहते हैं। महाराज! दादा रुग्ण हैं। इससे मन बहलाव हो जायेगा। भला द्यूत-क्रीड़ा से क्या युधिष्ठिर का समस्त धन जीता जा सकता है? वह अतुल है महाराज!"

उस दिन जब मैं धृतराष्ट्र के गृह से लौटा तो मुझको पूर्ण षड्यन्त्र का आभास हो गया। वातवेग के यह कहने पर कि शकुनि को महाराज ने पहले ही स्वीकृति दे रखी है, मुझको समझ आ गया कि क्यों दुर्योधन, कर्ण आदि युधिष्ठिर के यज्ञ में बाधक नहीं बने।

: 8 :

मुझे युधिष्ठिर की द्यूत-क्रीड़ा के सम्बन्ध में दुर्बलता का ज्ञान था। बचपन में भी दुर्योधन उससे जुआ खेलकर उसको ठग लिया करता था। इस पर भी आह्वान किए जाने पर वह सदा खेलने के लिये तैयार रहता था।

मैं विचार करता था कि यदि युधिष्ठिर यहाँ आ गया तो कौरव उसको अवश्य ही जुआ खेलने पर राजी कर लेंगे। यदि एक बार युधिष्ठिर हारने लगा तो वह अपना सर्वनाश किये बिना हटेगा नहीं।

अगले दिन ही इन्द्रप्रस्थ युधिष्ठिर को हस्तिनापुर आने का निमन्त्रण भेज दिया गया। मैंने निश्चय किया कि कुछ करना चाहिये जिससे युधिष्टिर इत्यादि को समझाया जा सके।

इस समय मुझे श्रीकृष्ण की याद आ गयी। मेरे मन में आया कि कृष्ण को यहाँ लाना चाहिये। कृष्ण या तो इस द्यूत-क्रीड़ा को होने नहीं देगा और यदि हुई तो उसमें धोखा अथवा छल नहीं होने देगा।

उसी दिन मैं एक वेग-गामी रथ पर सवार होकर द्वारिका की ओर चल पड़ा।

द्वारिका हस्तिनापुर से बहुत दूर है और मैं यह विचार कर कि कहीं कृष्ण देरी से पहुंचा तो यह सब कुछ चौपट हो सकता है, घोड़े बदलता हुआ दिन-रात चलता गया।

मैं द्वारिका पहुंचा तो यह जानकर मुझे बहुत निराशा हुई कि कृष्ण वहां पर नहीं है। वह शाल्व के विरुद्ध युद्ध पर गया हुआ था। द्वारिका में यह समाचार था कि शाल्व की सेना पीछे हट रही है। कृष्ण दो-चार दिन में ही विजयी होकर लौटने वाले हैं।

विवश हो मुझे वहां पर प्रतीक्षा करनी पड़ी। कृष्ण को समर से लौटने में एक सप्ताह से ऊपर लग गया। जब वह आया तो मैं अविलम्ब उससे मिलने के लिये गया। मैंने, जब अपने वहां आने का प्रयोजन बताया तो वह भी घबरा उठा। युद्ध के पश्चात् उसकी राज्य-परिषद् होने वाली थी। यद्यपि परिषद् के सब सदस्य चाहते थे कि वह उसमें भाग लें, परन्तु कृष्ण ने एक पल भी ठहरना उचित न मान, हस्तिनापुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग में कृष्ण ने कहा, ''संजय जी, वहां खेल समाप्त हो चुका होगा। इस पर भी मैं कहता हूं कि यदि मातृशक्ति का अपमान हुआ तो निश्चय जानिये, सारे कौरव कुल को मैं वहीं भस्म कर दूंगा।'' मैंने कृष्ण के मुख पर देखा। उनकी आँखों में अश्रुजल था। कदाचित् वे अपनी दूरदृष्टि से किसी अनिष्ट की सम्भावना कर रहे थे। मैंने पूछा, ''क्या आप ऐसी कोई सम्भावना समझते हैं?''

''दुर्योधन महापातकी और नीच प्रकृति का व्यक्ति है। उससे कुछ भी आशा की जा सकती है। मैं सब-कुछ सहन कर सकता हूँ परन्तु महिलाओं का अपमान सहन नहीं कर सकता।''

जब हम हस्तिनापुर पहुंचे तो वास्तव में खेल समाप्त हो चुका था। हम सीधा विदुर जी के आवास पर पहुंचे तो उन्होंने रोते हुए सभा की कारवाई सुनाई। विदुर जी बोले, ''कृष्ण! महान् अनर्थ हो गया है। मतिभ्रष्ट युधिष्ठिर स्वयं को हार, राजपाट हारा, अपने भाइयों को हारा और अन्त में उसने द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया। जब सब-कुछ हार बैठा तो नीच दुर्योधन ने द्रौपदी को सभा भवन में बुला भेजा।

''द्रौपदी को रनवास में से घसीटते हुए लाया गया। जब वह सभा भवन में पहुंची तो दुर्योधन ने कहा, 'द्रौपदी! यह देखो, तुम्हारे पाँचों पति जुए में हारे बैठे हैं। उनका सारा राज्य अब हमारा है। वे स्वयं हमारे दास हैं और तुम्हें भी दाँव लगाकर युधिष्ठिर हार चुका है। अब तुम हमारी दासी हो। मैं तुम्हें आदेश देता हूं कि तुम सर्वथा नग्न होकर हमें अपना नृत्य दिखाओ।''

''कृष्ण!'' विदुर जी ने आगे कहा, ''उस सभा भवन में सन्नाटा छा गया। भीष्म पितामह, महाराज धृतराष्ट्र, गुरु द्रोणाचार्य तथा अन्य सभी वृद्ध जनों के मुख नीचे हो गये, परन्तु किसी का साहस नहीं हुआ कि दुर्योधन के विरुद्ध कुछ कहें। इस समय द्रौपदी बोली, 'मैं कुरुकुल की वधू हूं। दुर्योधन, तुम्हें लज्जा आनी चाहिये ऐसी बात मुख से निकालते हुए।'

''इस पर दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण तथा दुर्योधन के भाई हँसने लगे। दुर्योधन ने कहा, 'द्रौपदी, तुम केवल दासी हो। हम चाहते हैं कि तुम हमें अपना नृत्य दिखाओ।' इतना कह दुर्योधन ने दुःशासन को संकेत कर दिया। दुःशासन द्रौपदी की साड़ी को पकड़ कर खींचने लगा। उस समय द्रौपदी विह्वल हो तुम्हें 'कृष्ण कृष्ण, मेरी लाज की रक्षा करो' कहकर पुकारने लगी। पता नहीं क्या हुआ कि दुःशासन उसकी साड़ी को खींचने का जितना जोर लगाता था वह सब व्यर्थ गया। द्रौपदी की साड़ी नहीं खुली। इस पर दुर्योधन के अन्य भाई भी आगे आये और मिलकर जोर लगाने लगे, लेकिन वे सब मिलकर भी उसका चीर नहीं हर सके। वे थक कर बैठ गये। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं कृष्ण, क्योंकि यह तुम्हारा योगबल ही प्रतीत होता है जिसने आज द्रोपदी की लाज के साथ मूढ़मति पाण्डवों को इतिहास में कलंकित होने से बचाया।

''इस पर द्रौपदी ने पितामह को सम्बोधन कर कहा, 'पितामह! मुझसे एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराध हो गया है, जो मेरा यह अपमान किया जा रहा है। जब मैं इस सभा में आई थी, मुझे आप वृद्धजनों को प्रणाम करना चाहिये था। मैं अपनी इस भूल के लिये क्षमा चाहती हूं।

'अब मैं आपसे एक बात जानना चाहती हूं कि मैं अपने पतियों की धर्मानुकूल अर्द्धांगिनी हूँ या दासी? अग्नि के समक्ष मेरा पाणि-ग्रहण, विधि-विधान के ही अनुसार मेरे पतियों ने किया है। ऐसी अवस्था में मुझको मुझसे पूछे बिना मेरे पति दाँव पर कैसे लगा सकते थे?'

''इस प्रश्न पर तो सब चुप कर गये। दुर्योधन और शकुनि भी उसका मुख देखने लगे। उत्तर कर्ण ने दिया, 'यह कुल की प्रथा है कि पत्नी पति की सम्पत्ति मानी जाती है। अतः पति उसको जुए में हार भी सकता है।''

''इस पर द्रौपदी ने कहा—'मैं अपने प्रश्न का उत्तर धर्म के ज्ञाता पितामह भीष्म से सुनना चाहती हूं। कुल-प्रथा और लोक-प्रथा व्यापक धर्म की विरोधी नहीं हो सकती।'

''उस समय भीष्म जी की मति भी भ्रष्ट हो गई थी। उन्होंने मुख नीचा कर कह दिया—

'बैटी! धर्म की गति अति सूक्ष्म है। लोक से विज्ञ महात्मा भी उसको ठीक-ठीक नहीं जान सकते। संसार में बलवान मनुष्य जिसको धर्म समझते हैं, विचार के समय लोग उसको ही धर्म मान लेते हैं और बलहीन पुरुष बलशाली से बताये धर्म के अधीन हो जाता है।

'अतः द्रौपदी! द्रर्योधन और कर्ण जो कहते हैं वह ही धर्म है। मैं इस विषय में क्या मत दे सकता हूं!'

''इसके उपरान्त भीष्म जी दुर्योधन से विनतीपूर्वक कहने लगे, अपने परिवार की एक कुलीन नारी को इस प्रकार भरी सभा में अपमानित करना धर्म है क्या? विचार लो कि क्या कर रहे हो?'

''इस पर दुर्योधन ने पुनः अपना दावा द्रौपदी पर दिखाते हुए कहा, 'पितामह, स्वेच्छा से युधिष्ठिर ने द्रौपदी को दाँव पर लगाया था और हार गया है। इसमें तो दो वचन हो ही नहीं सकते कि द्रौपदी अब मेरी है। रही बात कुलीन की। वह कुलीन रही होगी, परन्तु जब से वह पांच पतियों की पत्नी बनी है तब से कुलीन नहीं रही। उसकी यदि कोई संज्ञा हो सकती है, तो वह वेश्या की है।

'अब मैं द्रौपदी को कहता हूं कि वह अपने पतियों से पूछ ले कि उन्होंने उसको दाँव पर लगाया है अथवा नहीं?'

''युधिष्ठिर घुटनों में सिर दिये अति लज्जित भाव से चुपचाप बैठा था। जब दुर्योधन की बात का युधिष्ठिर ने उत्तर नहीं दिया और कौरव हँसते हुए पांडवों की खिल्ली उड़ाने लगे, तब मैंने आगे बढ़कर पितामह को सम्बोधन करके कहा, तात्!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जो कुछ हुआ है, न केवल अधर्म है तथा पाप है, प्रत्युत अन्याय भी हो रहा। यह अधर्म इस कारण है कि किसी भी राज-सभा में स्त्रियों को नग्न कर दिखाया नहीं जाता।

'यह पाप इसलिये है कि द्यूत-क्रीड़ा पापमय आय कराने वाली है।'

''यह अन्याय इस कारण है कि द्रौपदी को दाँव पर लगाने वाला व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं था। युधिष्ठिर पहले अपनी पूर्ण सम्पत्ति और स्वयं को हारा, पीछे अपने भाइयों को और अन्त में अपनी पत्नी को।

'जब एक व्यक्ति अपने को भी हार चुका हो तो वह स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता और जो स्वतन्त्र नहीं, वह किसी अन्य को दाँव पर कैसे लगा सकता है?'

''मेरी युक्ति को सुनकर भीष्म जी बोले, 'बात ठीक है। चारों भाई और द्रौपदी स्वतन्त्र हैं?'

''मैंने आगे कहा, 'और पितामह! राज्य प्रजा का है। प्रजा से पूछे बिना कोई राज्य को कैसे दाँव पर लगा सकता है? मैं कहता हूं कि इन्द्रप्रस्थ की प्रजा से पूछा जाये कि वह किसको राजा रखना चाहती है और यदि प्रजा कहे तो राज्य युधिष्ठिर को लौटा दिया जाय।'

'नहीं हम यह नहीं मानेंगे। राज्य हमने जीता है।' दुर्योधन ने कहा।

''अब भीष्म जी ने कहा, 'तो ठीक है, मैं युधिष्ठिर को स्वतन्त्र करता हूं। मनुष्य को दास बनाने की प्रथा हम स्वीकार नहीं कर सकते। राज्य दुर्योधन चाहे तो अपने पास रख सकता है।'

''भीष्म जी के इतना कहने पर युधिष्ठिर और उसके भाई तथा द्रौपदी मुख नीचा किये उठ खड़े हुए और सभा भवन से जाने लगे। इस समय शकुनि ने दुर्योधन के कान में कुछ कहा। दुर्योधन उठकर कहने लगा, 'पितामह, आपने पाण्डवों को स्वतन्त्र कर दिया है परन्तु इनका राज्य तो मेरे पास है। अब ये जाएंगे कहाँ? अतः मेरा एक प्रस्ताव है। मैं इनका राज्य इनको लौटा सकता हूं। मेरी एक शर्त है। युधिष्ठिर एक दाँव और खेले। यदि इसमें यह जीत जाता है तो राज्य इसको लौटा दिया जाये और ये वापिस इन्द्रप्रस्थ जा सकेंगे और यदि यह दाँव भी हार जाता है तो ये बारह वर्ष तक वन में वास करें। इसके बाद एक वर्ष तक अज्ञातवास करें। तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करने के बाद इनको राज्य लौटा दिया जाएगा और यदि ये अज्ञातवास न कर सके तो पुनः बारह वर्ष तक ये वन में वास करें।'

'दुर्योधन को भय था कि पाँचों भाई स्वयं अपनी शक्ति से पुनः एक राज्य का निर्माण कर सकते हैं और पुनः वही समस्या सामने आ जायेगी। इस कारण वह उनको शर्त में बाँधना चाहता था। मतिभ्रष्ट युधिष्ठिर पुनः उसकी चाल में आ गया। उसने पुनः जुआ खेला और पुनः हार गया।

''अब पाँचों भाई और द्रौपदी वन को चले गये हैं।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदुर जी ने रोते हुए यह कथा सुनाई।

मैं और श्रीकृष्ण उसी समय वन की दिशा में जिस ओर पांडव गये थे, चल पड़े। हम चाहते थे कि उनको अभी भी समझाया जाये कि उनके साथ छल किया गया है और छलियों के साथ छल खेलने में कोई हानि नहीं। पांडवों को चाहिये कि वे सीधा इन्द्रप्रस्थ चले जायें और राज्य पर अधिकार कर लें और यदि दुर्योधन आक्रमण करे तो उससे युद्ध करें।

हमें वन में अधिक दूर नहीं जाना पड़ा। पाण्डव पैदल ही गये थे और हम रथ में थे। अतः पहले ही पडाव पर हमने उन्हें पकड़ लिया। युधिष्ठिर तथा अन्य सभी ने हमें देखा तो उठकर हमें प्रणाम किया। कृष्ण ने कहा, "भैया, यह तुमने क्या किया,"

"भैया यह विधाता का लिखा हुआ पूरा हुआ है। मेरी मति भ्रष्ट हो गई थी। हर बार मैं विचार करता था कि शकुनि का छल मैं पकड़ लूंगा और मैं पकड़ नहीं सका।"

"तो तुमने खेलना क्यों नहीं छोड़ दिया?" कृष्ण ने पूछा।

"यही तो मतिभ्रष्ट होने के लक्षण हैं।"

"देखो युधिष्ठिर!" अब मैंने कहा, "तुम्हारे पितामह ने कहा था कि बलवानों का बल ही धर्म है। बलवान व्यक्ति जो कहे वह धर्म है। तुम अभी भी बलवान हो। तुम चलो इन्द्रप्रस्थ और अपना राज्य अपने बल से प्राप्त करो। यही धर्म है।"

"संजय जी, जो धर्म की परिभाषा भीष्म जी ने की है, मैं उसको नहीं मानता। मैं अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना ही धर्म समझता हूँ। अपना धन-वैभव मैं हार चुका हूँ। वह अब मेरा नहीं रहा। इस कारण उसका भोग करना मेरे लिये पाप है।"

"तो आप नहीं जानते कि शकुनि ने छल से आपको हराया है?"

"मैं विश्वास से नहीं कह सकता। जब तक किसी का छल पकड़ा न जाये, हम कैसे कह सकते हैं कि यह छल है। यह मेरी आत्मा की आवाज है कि मैं अपने प्रण पर दृढ़ रहूँ। मैं बारह वर्ष तक वन में रहूंगा और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करूंगा। उसके बाद ही राज्य प्राप्त करूंगा।"

अब खिन्न मन से श्रीकृष्ण बोले, "युधिष्ठिर, तुम ठीक कहते हो। राजसूय यज्ञ की सफलता और अपार धन-वैभव की अनायास प्राप्ति बड़े-बड़े ज्ञानी और तपस्वियों को भी पतित कर देती है। अब आप लोग तेरह वर्ष तक वन में रहिये, क्योंकि इसी से आपकी बुद्धि की मलिनता दूर होगी। उस समय हम देखेंगे कि क्या किया जा सकता है।"

: 9 :

पाण्डव वन को गये परन्तु कौरवों को अभी भी चैन नहीं था। उनकी गोष्ठियाँ चल रही थीं और वे षड्यन्त्र रच रहे थे कि पाण्डवों को किस प्रकार वन में ही नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया जाये।

एक ओर उनके पीछे गुप्तचर छोड़े जा रहे थे, जिससे उनकी गतिविधियों पर ध्यान रहे तथा दूसरी ओर देश भर के नरेशों के पास दूत भेजे जाने लगे थे, उनसे सन्धियां की जा रही थीं तथा प्रजा में यह प्रचार किया जा रहा था पाण्डव बुद्धिभ्रष्ट हैं, जुआरी हैं तथा उनकी पत्नी द्रौपदी वैश्या है। इस प्रकार राजाओं को तथा प्रजा को अनुकूल किया जा रहा था, जिससे तेरह वर्ष बाद यदि युद्ध हो तो वे सब दुर्योधन का पक्ष लें।

एक दिन मेरे मन में इच्छा जागृत हुई कि मैं भी पांडवों का समाचार लूं तथा उन्हें कौरवों के षड्यन्त्र के बारे में बताऊँ। अतः मैं काम्यक वन में, जहां इन दिनों पांडव ठहरे हुए थे, जा पहुंचा। मेरे सौभाग्य से धृष्टद्युम्न तथा श्रीकृष्ण भी रुक्मिणी सहित वहां आय हुए थे। अतः मुझे उनके दर्शन भी हो गये।

मैं युधिष्ठिर से मिला। युधिष्ठिर ने मुझसे पितामह, महाराज धृतराष्ट्र तथा अन्य वृद्धजनों का समाचार पूछा। इसके बाद उसने दुर्योधन इत्यादि का हाल पूछा। उसके मन में अभी भी हीन भावना थी तथा ऐसा प्रतीत होता था कि उसे विश्वास था कि तेरह वर्ष के बाद उसे पुनः राज्य मिल जायेगा।

मैंने कहा, ''महाराज! कौरव अभी भी आप लोगों को षड्यन्त्र द्वारा मरवाने का यत्न कर रहे हैं। उनके प्रासाद में गुप्त गोष्ठियां चलती रहती हैं तथा आपके पीछे उनके गुप्तचर लगे हुए हैं। इसी कारण आपको सावधान करने आया हूं।

''महाराज! विश्वास रखिये कि तेरह वर्ष उपरान्त भी आपको राज्य नहीं लौटाया जायेगा।''

मैं कृष्ण से मिला। कुशल समाचार जाना। मेरे वहाँ बैठे-बैठे रुक्मिणी द्रौपदी को लेकर उनसे मिलने आई। द्रौपदी के केश खुले थे। दुःशासन ने द्रौपदी के केश पकड़ कर उसको खींचा था और तब से ही वे खुले थे। द्रौपदी ने प्रतिज्ञा ली थी कि इन केशों को दुःशासन के रक्त से स्नान कराने के बाद ही वह उन्हें बाँधेगी।

द्रौपदी ने कृष्ण के सम्मुख विलाप करते हुए कहा, ''भैया! लोग तुमको भगवान् का अवतार मानते हैं। तुम अपराजित हो और सब पर विजय प्राप्त करने वाले हो। इस पर भी अपनी बहन का ऐसा अनादार और अपमान कैसे सहन कर रहे हो? मुझे बहुत गर्व था—अपने पाँच शूरवीर पतियों पर, इनकी धर्मपरायणता पर, इनके गांडीव धनुष और गदा पर। परन्तु उस समय ये सब धरे-के-धरे रह गये। न जाने इनको क्या हो गया? जब इनकी पत्नी को बालों से पकड़कर घसीटते हुए सभा में लाया गया, उस समय मैं अपने को पाँच पतियों की पत्नी होते हुए भी विधवा से भी गयी-गुजरी समझ रही थी।

''अब मैं पाँच शूरवीरों की पत्नी तथा वासुदेव और धृष्टद्युम्न की बहन इस प्रकार वन में असहाय पड़ी हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं आश्चर्य तो इस बात पर कर रही हूं कि तुम लोग लज्जा से अपना मुख क्यों नहीं छिपा लेते?"

द्रौपदी खुले बालों से श्रीकृष्ण, धृष्टद्युम्न और रुक्मिणी के सामने बैठी रो रही थी। रोते-रोते उसकी कंचुकी भीग गयी थी। जब उसका रुदन असह्य हो गया तो कृष्ण ने हाथ खड़ा कर सांत्वना देते हुए कहा, "बहन! संजयजी मुझको लेने के लिये द्वारिका गए थे। परन्तु मैं उस समय शाल्व से युद्ध में व्यस्त था। मुझको कई दिन तो उसको परास्त करने में लगे। तत्पश्चात् यादवों और नटों के युद्ध के कारण मार्ग अवरुद्ध था। इस कारण हस्तिनापुर पहुंचने में विलम्ब हुआ। मेरे पहुंचने से पूर्व ही सब खेल समाप्त हो चुका था।

"मैं हस्तिनापुर देरी से पहुंचा अन्यथा तुम्हारा अपमान करने वाले वहीं निर्मूल हो चुके होते। परन्तु होनि बड़ी प्रबल है।

"जुए में जो छल-कपट हुआ, उसका प्रतिकार तो महाराज युधिष्ठर ही कर सकते थे। जब वही अपनी हार मान गये और वन को चले आये तब हम क्या कर सकते थे?"

"तो भैया, क्या मैं सदा इसी प्रकार वन-वन भटकती रहूंगी तथा अपने साथ हुए अपमान में गलती रहूंगी?"

"नहीं द्रौपदी! ऐसा नहीं हो सकता। यह निश्चय जानो कि तुम पुनः पटरानी बनोगी। आकाश फट जाये, धरती टूक-टूक हो जाये, सागर सूख जाये, पर मेरा यह वचन मिथ्या नहीं हो सकता। जिन लोगों ने तुम्हारा अपमान किया है, उनकी पत्नियां अपने पतियों को अर्जुन के वाणों से विंधा हुआ और रक्त से लथपथ देख तुमसे भी अधिक रुदन करेंगी।"

इस प्रकार द्रौपदी को सान्त्वना दे तथा युधिष्ठिर को यह कह कि उनको वन में एक ही स्थान पर न ठहर, धूमते-फिरते रहना चाहिए, जिससे दुर्योधन इत्यादि उनका अनिष्ट न कर सकें, कृष्ण इत्यादि लौट गये और मैं भी हस्तिनापुर लौट आया।

: 10 :

एक दिन मुझे समाचार मिला कि दुर्योधन अपने भाईयों सहित एक भारी संख्या में अंग-रक्षक लेकर द्वैतवन को जा रहा है। कर्ण तथा दुर्योधन के अन्य साथी भी जा रहे थे। परिवार की स्त्रियाँ भी साथ थीं। परन्तु मुझे पता लग गया था कि परिवार साथ में इस कारण है जिससे लोगों की आँखों में धूल झोंकी जा सके। दुर्योधन का अभिप्राय था कि किसी प्रकार पांडवों को षड्यन्त्र द्वारा समाप्त किया जायें।

मैंने तुरन्त देवेन्द्र को सूचना भेज दी कि वन में पांडवों का जीवन भय में है। इसके साथ ही एक दूत मैंने युधिष्ठिर के पास भी भेज दिया।

दुर्योधन दल-बल सहित द्वैतवन को चला गया। उसको गये एक मास हो गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि द्वैतवन से पहले कुछ सैनिक लौटे। उनमें प्रायः घायल थे। उन्होंने समाचार दिया कि इन्द्र के सेवक गन्धर्वों से युद्ध में वे घायल हुए हैं।

इनके पश्चात् कुछ अन्य सैनिक आये। उन्होंने बताया कि राजा दुर्योधन सरोवर पर जल-क्रीड़ा के लिए स्थान बनाने लगे थे गन्धर्वों ने आपत्ति की। इससे झगड़ा बढ़ गया। युद्ध हुआ। कर्ण ने बहुत शौर्य दिखाया। परन्तु जब उनका रथ टूटकर टूक-टूक हो गया तो वे भी घायल हो गये थे। तत्पश्चात् महाराज दुर्योधन, दुःशासन और अन्य कौरव तथा उनकी पत्नियाँ गन्धर्वों के बन्दी हो गये हैं। यह सैनिक जान बचा कर भाग आये थे। बहुत से मारे गये थे, जो लौटे वे घायल हो गये थे।

इस समाचार से पूर्ण राज-प्रसाद में हा-हाकार मच गया। महाराज धृतराष्ट्र विलाप करने लगे। सब शंकित थे कि इन्द्र से युद्ध में जीता जा सकेगा क्या?

अभी नवीन सेना युद्ध के लिए तैयार की ही जा रही थी कि दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण आदि टूटे-फूटे रथों में बैठे हुए सिर छुपाने हस्तिनापुर में आ पहुंचे। इस पर वहां खूब हर्ष मनाया गया।

मेरा भेजा दूत भी आया और उसने पूर्ण समाचार इस प्रकार बताया। उसने कहा, "मैं युधिष्ठिर जी के पास समाचार लेकर गया तो उन्होंने पूछा, 'दुर्योधन यहां क्या करने आ रहा है?'

"मैंने बताया, महाराज! यह कहना कठिन है। उसका यहां आना युद्ध के निमित्त ही हो सकता है। उसके आने का प्रयोजन आप की हंसी उड़ाना भी हो सकता है। यह केवल मनोविनोद के कारण भी हो सकता है। इस पर भी आपको सावधान रहना चाहिए।'

"दुर्योधनादि ने द्वैतवन से बाहर अपना शिविर लगाया और वन की गऊओं की गणना का कार्य आरम्भ कर दिया। कुछ दिन के पश्चात् कौरव-सेना इधर-उधर घूमती हुई पशु-पक्षियों को मारने लगी।

"एकाएक समाचार मिला कि गन्धर्वराज चित्रसेन वहाँ विहार करने आए हैं और सरोवर के किनारे डेरा डाल रहे हैं। इसके पश्चात समाचार प्राप्त हुआ कि दुर्योधन भी सरोवर के पास जलविहार के लिए शिविर लगाना चाहता है। इस प्रकार उनका झगड़ा आरम्भ हो गया। गन्धर्व सेना अधिक थी। अतः उन्होंने प्रायः कौरव सेना को मार डाला और दुर्योधन आदि को बन्दी बना लिया। गन्धर्वों ने कौरव रानियों को पकड़ लिया और शिविर को आग लगा दी।

"यह समाचार कौरव सैनिक पांडवों के पास लेकर आये। भीम तो इस समाचार से बहुत प्रसन्न हुआ और अपने बड़े भाई युधिष्ठिर से बोला, 'भैया! बहुत अच्छा हुआ। इन्द्र हमारा हितेच्छु है। इस कारण हमें उनका धन्यवाद करना चाहिए। उसने वही कर दिया है, जो हमें करना पड़ता।'

"परन्तु युधिष्ठिर ने भीम को डाँटा और कहा, 'हम परस्पर झगड़ते समय एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौ और पांच हैं, परन्तु दूसरों के साथ झगड़ा होने पर हम एक सौ पांच है।'

"इस पर भीम चुप हो गया। युधिष्ठिर ने कह दिया, 'देखो भीम! हमारी कुल की स्त्रिया पकड़ी गई हैं। यह अत्याचार हम सहन नहीं कर सकते। अतः शीघ्र जाओ और उनको छुड़ाकर लाओ।'

"इस पर चारों भाई अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर गन्धर्वों से लड़ने के लिए चले गए। युधिष्ठिर स्वयं यज्ञ पर बैठा था। इस कारण वह उठा नहीं।

"घमासान युद्ध के पश्चात् गन्धर्वराज परास्त हुए और अर्जुन गन्धर्वराज चित्रसेन को बन्दी बना कर महाराज युधिष्ठिर के सामने ले आया।

"चित्रसेन ने युधिष्ठिर को बताया, 'धर्मराज! हम तो सुरराज की आज्ञा से ही दुर्योधन को पकड़ने आए थे। हम जान गए थे कि वे आपसे युद्ध के विचार से आए हैं। उनका विचार था कि आपको मार कर सदा के लिए आपका कांटा निकाल सकेंगे।

'भगवन्! इन्द्र आपके मित्र है। उन्होंने यह जान कि आप यज्ञ कर रहे हैं और अकेले हैं, मुझे भेजा था कि मैं दुर्योधन को बन्दी बनाकर सुरराज के सम्मुख उपस्थित करूँ।'

"युधिष्ठिर ने कहा, 'गन्धर्वराज! हम इन्द्र के अपने प्रति इस अनुग्रह के लिए अत्यन्त आभारी हैं। उनको हमारा नमस्कार कहना। इस पर भी उनसे कहना कि हम अपने पारिवारिक झगड़ों को स्वयं ही निबटाने की शक्ति रखते हैं। हम अपना शिकार किसी दूसरे से मरवा कर प्रसन्न नहीं हो सकते।'

"अतः दुर्योधन आदि भाई तथा सब स्त्रियाँ छोड़ दी जाएं। मैं उनका धन्यवाद करता हूं।"

यह सब वृत्तान्त सुन मुझे प्रसन्नता नहीं हुई। मेरे मस्तिष्क में होने वाले युद्ध का चित्र इतना भयानक था कि उसके निवारण के लिए इन्द्र ने सुगमता से ही कार्यसिद्धि कर दी प्रतीत होती थी।

"मुझे युधिष्ठिर की युक्ति समझ नहीं आई कि वह अपने पारिवारिक झगड़ों को निपटाने की शक्ति रखता है। क्या वह आगामी युद्ध में अपने चारों भाइयों सहित कौरवों के पक्ष में युद्ध करने वाले लक्ष-लक्ष सैनिकों को युद्ध में परास्त कर सकेगा? अब इन्द्र ने उसकी सहायता की थी। न केवल उसको सुरक्षित किया था वरन् शत्रु को बन्दी भी बना लिया था और इस 'धर्मपुत्र' ने शत्रु को स्वतन्त्र कराया और साथ ही इन्द्र को रुष्ट करने का यत्न किया।

कुल की स्त्रियों को छुड़ाना ठीक था, परन्तु दुर्योधन को छुड़ाने से पूर्व उससे शर्ते मनवाई जा सकती थीं। युधिष्ठिर स्वयं ऐसा न करता, परन्तु इन्द्र को करने देता।

दुर्योधन इत्यादि लौटकर आये तो मन में निश्चय करके कि वे इस अपमान का बदला लेकर रहेंगे।

उसने घोषणा कर दी कि वह वैष्णव यज्ञ करेगा। इस यज्ञ का उद्देश्य था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की उन शक्तियों का एकीकरण जो पांडवों के विरुद्ध की जा सकती थीं और साथ ही पाण्डवों को मित्रहीन बनाना।

कर्ण एक चतुरंगिणी सेना लेकर देश-विजय को निकला। एक वर्ष तक घूम-घामकर, विभिन्न राजाओं से सन्धि कर तथा अतुल धन-सम्पदा एकत्र कर वह लौट आया।

यज्ञ रचा गया और सम्पन्न हो गया। कौरवों के पक्ष के सहस्रों राजा एकत्र हुए और कौरवों के पक्ष में प्रतिज्ञा-बद्ध हो गये। यह कौरवों की भारी कूटनीतिक विजय थी।

: 11 :

जब पांडव बनवास के तेरहवें वर्ष आज्ञातवास कर रहे थे, एक दिन मैं भीष्मजी के आवास में पहुंचा तो पता चला कि वे पारिवारिक गोष्ठी में गये हुए हैं। मेरे मन में सन्देह उत्पन्न हो गया कि कहीं युद्ध की तैयारी न हो रही हो। मैंने भीष्मजी के आवास में एक परिचित सेवक से पूछा तो उसने बताया—''सेना की तैयारी का आदेश भेज दिया गया है। कल से यह तीसरी बार गोष्ठी हो रही है।''

''तो पांडवों का पता चल गया है?'' मैंने पूछ लिया।

''कह नहीं सकते। पितामह भी अपना कवच और धनुष-बाण तेल लगवाकर साफ करवा रहे हैं।''

मैं भीष्मजी के गोष्ठी से लौट आने की प्रतीक्षा करने लगा। भीष्मजी आये तो मैंने खड़े होकर प्रणाम किया। वे प्रसन्न-वदन थे। मुझको देख हर्षित होकर बोले, ''आइये संजयजी! हस्तिनापुर ने निश्चय किया है कि विराट नगर पर आक्रमण कर दिया जाये।''

''किस प्रयोजन से?'' मैंने आश्चर्य करते हुए पूछा।

''यह सन्देह किया जा रहा है कि पांडव उसी नगरी में छिपे हुए है।''

''तो केवल-मात्र सन्देह पर ही उस नगर तथा राज्य के विध्वंस का आयोजन कर डाला है?''

''हां! यह समझा जा रहा है कि यदि पांडवों को पकड़ लिया गया तो भविष्य में होने वाला भयंकर युद्ध टाला जा सकेगा। वे पुनः बारह वर्ष के लिए वन को भेज दिये जायेंगे।''

''परन्तु महाराज! विराट नगर पर सन्देह करने में क्या कारण है?''

''कुछ दिन पूर्व वहां का सेनापति कीचक एक सुन्दरी सैरन्ध्री के आवास में जाता हुआ सैरन्ध्री के गन्धर्व-पति से मार डाला गया था। कीचक अति बलशाली व्यक्ति था। उसको मल्ल-युद्ध में मार डालने की क्षमता भीम के अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं थी। अर्थात् सैरन्ध्री अवश्य अनुपम होगी। हमारा अनुमान है कि वह द्रौपदी ही होगी?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो, श्रीमान्! यह अभियान कब तक आरम्भ होने वाला है?"

"एक-दो दिन में प्रस्थान होगा।"

मैं वहां से चला आया। मार्ग-भर में यही विचार कर रहा था कि दुर्योधन इत्यादि को रोकने के स्थान, युधिष्ठिर इत्यादि के पास कोई विश्वस्त व्यक्ति भेज उनको विराट नगर से प्रस्थान कर देने के लिए कहना चाहिये। अतः मैं यह जानने का विचार रखता था कि ये लोग सेना लेकर कब वहां पहुंचने का आयोजन बना रहे हैं।

माता कुन्ती से मिलने मैं जा पहुंचा। कुन्ती ने पांडवों के विषय में पूछा तो मैंने दुर्योधनादि का सन्देह बता दिया। मैंने उनको बताया कि वे सेना साथ ले, उनको पकड़ने जा रहे हैं।

"कितनी दूर है वह नगर यहां से?" उनका प्रश्न था।

"यहां से तीन सौ योजन के अन्तर पर है।"

"कितने दिन लग जायेंगे वहां पहुंचने में?"

"तुरन्त प्रस्थान कर दिया जाय तब भी बीस दिन में वहां पहुंचा जा सकेगा।"

"तब तो गुप्तवास काल के भीतर ये उनको पकड़ नहीं सकेंगे।"

"और वे वहां से कहीं अन्यन्त्र भी तो जा सकते हैं।"

"मैं यह नहीं कह रही। देखिये, यदि चन्द्र मास की गणना से देखा जाये तो उनके गुप्तवास का काल समाप्त हो चुका है और सौरमास की गणना से भी तो अब केवल बारह दिन शेष हैं।"

मैं यह जानकारी प्राप्त कर मन-ही-मन अति हर्षित हुआ। तदनन्तर मैंने कह दिया, "महारानीजी! आप यह बात अभी घोषित न कीजियेगा। मैं तो यह चाहता हूं कि विराट नगर में युद्ध हो जाये तो ठीक है।"

"हां! आप ठीक कहते हैं। मुझे विश्वास है कि मेरे पुत्र इनको वहां ही समाप्त कर देगे। इस प्रकार सम्भावित भीषण-युद्ध तथा उसमें होने वाली विराट जन-हत्या से बचा जा सकेगा। उनको निःसंकोच हो युद्ध करना चाहिए। अज्ञात-वास का काल समाप्त हो जाने से उनको प्रकट होने में भय नहीं करना चाहिए।"

मैं इस सूचना को धृतराष्ट्र के पास पहुंचाने के लिए नहीं गया। इस पर भी मुझको बुला लिया गया। मुझे धृतराष्ट्र ने आदेश दे दिया, "संजयजी! मेरी इच्छा इस युद्ध का विवरण जानने की हो रही है। अतः आप साथ में चले जाइये और इस युद्ध में दुर्योधन आदि के शौर्य अपने चक्षुओं से देखकर, मुझको आकर सुनाइये।"

मैं मान गया तो मेरे जाने का प्रबन्ध हो गया। रथ, सेवक और मार्गव्यय मिल गया। मैं सेना के प्रस्थान के पांच दिन उपरान्त हस्तिनापुर से चला और कौरवों की सेना की सूचना पहुंचने से भी पूर्व विराट नगर के सार्वजनिक पंथागार में जा टिका। वहां मुझको अपना नाम-धाम काल्पनिक लिखाना पड़ा।

अगले दिन मैं अभी प्रातः के संध्योपासना से निवृत्त ही हुआ था कि नगर-भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भयंकर कोलाहल का स्वर सुनाई पड़ा। मैं पंथागार से निकल सूचना लेने चल पड़ा। भयभीत नागरिक किंकर्त्तव्य-विमूढ़, इधर-उधर आ-जा रहे थे। उनमें से एक को रोककर मैं पूछने लगा, ''क्या हुआ है श्रीमान्!''

उस त्रसित नागरिक ने बताया, ''कौरव-सेना ने देश पर आक्रमण कर दिया है और राजा की गौशाला की सब गऊएं हर कर ले गए हैं।''

''मुझे विदित हुआ था कि विराट नगर की सारी सेना त्रिगत्तवों के साथ युद्ध में संलग्न थी। अब इस अवस्था में यही आशा थी कि कौरव सेना नगर में प्रवेश कर अधिकार कर लेगी।

मैं नगर से बाहर जा पहुंचा तथा उस ओर चल पड़ा, जिधर गऊएं ले जाई जा रही थीं। कुछ दूर जाकर मुझको कौरव-सेना व्यूह बाँधे खड़ी दिखाई दी। मैं भीष्म जी के सम्मुख जा प्रणाम कर खड़ा हो गया। भीष्मजी मुझे देख, आश्चर्यचकित हो पूछने लगे, ''संजयजी! क्या कर रहे हैं यहाँ?''

''महाराज के आदेश से युद्ध के समाचार लेने आया था। मगर यहां नगर में तो एक भी सैनिक नहीं है। युद्ध होते दिखाई नहीं पड़ता।''

''इतना तो हमें विदित है। विराट-नरेश अपनी सेना को लेकर त्रिगर्तों से लड़ने गये हैं। इस पर भी हमारा विचार था कि कुछ तो नगर-रक्षक इत्यादि यहां होंगे, जो अपने गोधन को छुड़ाने आएंगे। हम उनके स्वागत के लिए खड़े हैं।''

''पितामह! नगर में कोई नहीं। यह युद्ध नहीं होगा।''

मैं अभी यह कह ही रहा था कि विराट का राजकुमार 'उत्तर' रथ में बैठा हुआ अकेला नगर की ओर से आता दिखाई दिया। राजकुमार का सारथि एक स्त्री थी। यह देख कौरव-सैनिक हंसने लगे। मेरी भी हंसी निकल गई।

उसी समय दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य अपने रथ भगाते हुए भीष्म पितामह के पास आ पहुंचे। सब मुझे पितामह के रथ के समीप भूमि पर खड़ा देख विस्मय करने लगे। मैंने दुर्योधन को बताया कि उसके पिता ने मुझे उन सब का कुशल समाचार जानने के लिए भेजा है।

हम अभी बातें ही कर रहे थे कि विराटकुमार का रथ दूरी पर खड़ा हो गया। राजकुमार उत्तर रथ से उतर लौटता दिखाई दिया और रथ की सारथि स्त्री उसको पकड़ रथ की ओर घसीटती दिखाई दी। इस पर तो कौरव-सेना शंख-निनाद करने लगी। हम सब विराटकुमार की भीरुता का नाटक देख रहे थे। मैं विस्मय कर रहा था कि यह स्त्री कौन हो सकती है, जो उसको बाजू से पकड़कर युद्ध के मैदान में लाकर खड़ा करना चाहती है।

एकाएक राजकुमार खड़ा हो गया। तदनन्तर वह और सारथि, दोनों एक शमी वृक्ष के पीछे छिप गये। दुर्योधन ने हंसते हुए कहा, ''ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्त्री अब राजकुमार से प्रेम प्रकट कर उसे युद्ध के लिए तत्पर कर रही है।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम अभी परस्पर उस स्त्री के राजकुमार के साथ प्रेम करने के काल्पनिक चित्र पर व्यंग कस रहे थे कि राजकुमार वृक्ष की ओट से निकलकर आया और सारथि के स्थान पर बैठ गया और वृक्ष के पीछे से एक धनुर्धारी निकल, रथ में बैठ गया। इस धनुर्धारी को देखते ही सब के मुख से निकल गया, ''यह तो गांडीवधारी अर्जुन है।''

दुर्योधन ने कहा, ''पितामह! अब तो अर्जुन को पहचानने की घोषणा कर देनी चाहिए।''

''किसलिए? मैंने पूछा।

''जिससे पांडव पुनः बारह वर्ष के लिए वन में चले जायें।''

''परन्तु अज्ञात-वास का काल समाप्त हो चुका है।''

''चन्द्रमास की गणनानुसार न?''

''सौर-मास की गणनानुसार भी।''

यह सुन दुर्योधन का मुख पीला पड़ गया। उसने कहा, ''तब तो यह अभियान व्यर्थ गया। हमने अपना एक शत्रु अवश्य बना लिया है। मैं आज्ञा देता हूं कि हमें लौट चलना चाहिए।''

द्रोण ने इसके उत्तर में कहा, ''जब रण-क्षेत्र में शत्रु ललकार रहा हो, तब भाग कैसे सकते हो?''

कर्ण ने कहा, ''आज आनन्द आयेगा। मैं अर्जुन से युद्ध कर अपने मन की अग्नि शान्त करूंगा।''

अर्जुन ने कर्ण को अपनी ओर आते देखा तो अपना शंख बजा दिया और कर्ण पर आक्रमण कर दिया। युद्ध अभी घड़ी-भर भी नहीं चला था कि कर्ण का रथ टूट गया, अश्व मारे गये और कर्ण भागकर अश्वत्थामा के रथ पर चढ़ गया। अश्वत्थामा ने कह दिया, ''मैं अकेला अर्जुन से नहीं लड़ सकता।'' वह रथ को घुमाकर अपने शिविर की ओर चल दिया। कर्ण भी उसके साथ चला गया।

अब अर्जुन ने सेना से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। कौरव सेना ने जब उस अकेले महारथी को पूर्ण सेना को विदीर्ण करते देखा तो भयभीत हो भाग खड़ी हुई। द्रोणाचार्य घायल हो कृपाचार्य के रथ पर चढ़ कर लौट गये। भीष्म पितामह भी दुर्योधन को लेकर वापस हो गये। इस प्रकार सायं होते-होते कौरव सेना लौटने को तैयार हो गई। मैंने उनको जाते देखा तो पितामह को कह दिया, ''पितामह, अब हस्तिनापुर में मिलेंगे। प्रणाम।''

मैं विराटनगर को लौट कर राज्य-प्रासाद में जा पहुंचा। विराटराज को युद्ध के मोर्चे पर सूचना भेजी गई थी कि कौरव सेना ने आक्रमण किया है और वे कुछ सैनिकों के साथ लौट आये थे। परन्तु यहां के युद्ध की सूचना भी उनको मिल चुकी थी। मैंने अपना परिचय महाराज के पास भेज दिया और भेंट की प्रार्थना कर दी। मुझे तुरन्त उनके सामने उपस्थित किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार उत्तर युद्ध के बाद महाराज के पास पहुंच चुके थे तथा उन्होंने अपने सारथि का वास्तविक परिचय महाराज को देकर बताया था कि वास्तव में युद्ध तो अर्जुन ने ही किया है। महाराज के पास उस समय कंक के रूप में युधिष्ठिर उपस्थित थे। युधिष्ठिर ने अपना और अन्य पांडवों का तथा द्रौपदी का परिचय भी दे दिया था।

अज्ञातवास में पाँचों पांडव विराटनगर में राजा की सेवा में जा पहुंचे थे। युधिष्ठिर महाराज के साथ चौपट खेलने के लिये कंक के रूप में थे और अर्जुन स्त्री वेश में राजकुमारी को संगीत की शिक्षा देने के लिये नियुक्त था। संगीत की शिक्षा अर्जुन ने बनवास काल में देवलोक में प्राप्त की थी। भीम पाचक के रूप में था तथा नकुल और सहदेव अश्वशाला में नियुक्त किये गये थे। द्रौपदी महारानी की सेवा में थी।

द्रौपदी अति सुन्दर थी, इस कारण जब महारानी के भाई कीचक की दृष्टि उस पर पड़ी तो वह उससे प्रेम करने लगा। उसने उससे जबरदस्ती विवाह करना चाहा। जब भीम को यह विदित हुआ तो उसने द्रौपदी के नाम से रात्रि के समय कीचक को रंगशाला में बुलाया और वहां उसका वध कर दिया।

कीचक महा बलवान था और अजेय माना जाता था। इस कारण जब उसके वध का समाचार सब ओर फैला तो हस्तिनापुर भी पहुंचा। दुर्योधन इत्यादि को अनुमान हुआ कि अवश्य भीम ने ही उसका वध किया है। इसी कारण विराट पर आक्रमण किया गया था, जिससे यदि पांडव वहाँ हों तो वे पकड़े जा सकें। यह तो उनका दुर्भाग्य था कि उस समय तेरहवाँ वर्ष भी समाप्त हो चुका था।

अब विराटराज को जब पांडवों का परिचय मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने महाराज युधिष्ठिर से क्षमा मांगी कि वह उन्हें सेवक ही समझता रहा तथा साथ ही उसने विनती की कि अर्जुन तथा राजकुमारी उत्तरा का परस्पर विवाह कर दिया जाये।

परन्तु अर्जुन ने कह दिया कि वह उत्तरा को अपनी शिष्या के रूप में शिक्षा देता रहा है। शिष्या पुत्री के समान होती है। अतः वह उसका विवाह अपने पुत्र अभिमन्यु से स्वीकार कर सकता है।

इस प्रकार उत्तरा और अभिमन्यु के विवाह का निश्चय हो गया।

जब मुझे विराटराज के सम्मुख उपस्थित किया गया तो उस समय युधिष्ठिर अपना और अन्य भाईयों का परिचय दे चुका थे। मेरा परिचय मिलते ही युधिष्ठिर के कहने पर मुझे तुरन्त बुलाया गया और मेरा आदर सत्कार किया गया।

मैंने कुशल क्षेम जानने के बाद महाराज धृतराष्ट्र तथा भीष्म पितामह की भावना बता कर कहा, ''महाराज युधिष्ठिर, अब यह निश्चय जानिये कि बिना युद्ध के आपका राज्य आपको वापिस नहीं मिलेगा। अतः इस दृष्टि से आपको तैयारी करनी चाहिये। आपको अपने साथियों की एक गोष्ठी तुरन्त बुलानी चाहिये और अपना व्यवहार निश्चय करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर ने कहा, ''तात्! हम श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेज रहे हैं। उनके आने पर ही सब कुछ निश्चय करेंगे। आपसे हमारी प्रार्थना है कि अभिमन्यु तथा राजकुमारी उत्तरा के विवाह पर आप पधारें तथा हमारी माता कुन्ती को यहां आने के लिये कहें। साथ ही महाराज धृतराष्ट्र, पितामह एवं सभी गुरुजनों को भी आने का आग्रह करें।''

''महाराज! आप निमन्त्रण देंगे तो मैं सबको आग्रहपूर्वक कहूंगा परन्तु इनमें से कोई भी नहीं आयेगा। मैंने आपको बताया कि हस्तिनापुर में युद्ध की तैयारी आरम्भ होने जा रही है।''

मैं उनसे विदा लेकर हस्तिनापुर लौट आया। मैंने महाराज धृतराष्ट्र तथा भीष्म पितामह को निमन्त्रण की बात कही तो धृतराष्ट्र ने दुर्योधन का मुख देखना शुरू कर दिया। दुर्योधन का कहना था, निमंत्रण का उत्तर अब हम रणभूमि में देंगे।

पितामह भी कुछ कह नहीं सके। वह तो कहते थे कि उन्होंने दुर्योधन का नमक खाया है और जैसा वह कहेगा, वे करेंगे।

माता कुन्ती विराटनगर जाने को तैयार हो गई और विदुरजी से कहने लगीं कि वे भी साथ चलें।

विदुर जी मुझसे विनती की कि मैं माता कुन्ती को लेकर विराट नगर चला जाऊं। वास्तव में विदुर जी पांडवों की कुशलता के लिये अपने अनुष्ठान में व्यस्त थे तथा भाग-दौड़ में रुचि नहीं लेते थे।

अतः मैं पुनः विराटनगर जाने को तैयार हो गया।

: 12 :

मैं कुन्ती के साथ विराट नगर में पहुंचा तो सब को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। अभिमन्यु के विवाह पर श्रीकृष्ण तथा उनके परिवार के सभी सम्बन्धी, राजा द्रुपद, धृष्टद्युम्न इत्यादि पधारे हुए थे और सब लोगों में विचार विनिमय हो रहा था कि आगे क्या किया जाये।

इसमें निश्चय किया गया कि एक प्रतिनिधि को हस्तिनापुर भेजा जाये कि पांडवों ने जुए कि शर्त पूरी कर दी है और अब उनका राज्य लौटा दिया जाये और यदि वे राज्य न लौटाएं तो युद्ध की घोषणा कर दी जाये।

इसके बाद राजा द्रपद के राजपुरोहित को समझा कर हस्तिनापुर भेज दिया गया। निश्चित दिन वह राज्यसभा में उपस्थित हो गया।

उसने महाराज तथा सभासदों को प्रणाम कर कहा—

''महाराज! जुए की शर्त के अनुसार महाराज युधिष्ठिर ने अपने भाईयों-सहित वनवास की अवधि पूर्ण कर दी है। अब उनको इन्द्रप्रस्थ में जाकर राज्य ग्रहण करने की स्वीकृति होनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"युधिष्ठिर ने विनम्र-भाव से ही अपने पिता तुल्य महाराज से अपना उचित अधिकार मांगा है।"

इस पुरोहित की युक्तियुक्त बात सुन धृतराष्ट्र ने भीष्मजी से पूछ लिया, "क्या कहते हैं पितामह!"

भीष्म ने कहा, "यह तो वस्तु-स्थिति है ही, परन्तु युधिष्ठिर की मांग का उत्तर तो महाराज स्वयं ही दे सकते हैं।"

इस पर धृतराष्ट्र ने पुरोहित को कह दिया, "अच्छी बात है। आपके सन्देश का यथोचित उत्तर पांडवों के पास भेज दिया जायेगा।"

जब पुरोहित ने देखा कि उसको टालने के लिये, बिना उत्तर के भेजा जा रहा है, तो उसने अन्तिम बात कह दी। उसने कहा—

"इतना निवेदन मैं और कर देना चाहता हूं कि यदि न्याय और धर्म का मार्ग स्वीकार न किया गया तो युद्ध अवश्यम्भावी है। दुर्योधन को अर्जुन के पैने वाणों और भीम की वज्र-समान गदा को स्मरण कर लेना चाहिये। युद्ध में विजय इन दोनों वीरों की होगी।"

इतना कह पुरोहित लौट गया।

इसके बाद कौरवों की गोष्ठियां होने लगीं। अगले दिन मुझे राज्यसभा में बुलाया गया। मैं उपस्थित हुआ तो दुर्योधन ने कहा, "तात्! हम पांडवों की मांग का उत्तर भेजना चाहते हैं। क्या आप हमारे दूत बनकर जायेंगे?"

"यदि महाराज आज्ञा देंगे तो मैं जाऊंगा।"

"और मेरे कहने पर नहीं जायेंगे?"

"अभी तक महाराज धृतराष्ट्र ही अधिकारी हैं आज्ञा देने के।"

अब धृतराष्ट्र ने कहा, "संजयजी! आप दुर्योधन का सन्देश ले जाएं और पांडवों को सुमति दें कि अब उनके लिये भगवद् भजन ही कल्याणकारी होगा। उन्हें वन में रहने का अभ्यास है और युद्ध जैसी भयंकर बात उन्हें शोभा नहीं देती।"

दुर्योधन ने आगे कहा, "और उनको यह कहें कि भीरुओं की भांति याचना करना उनको शोभा नहीं देता। यदि भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, अचार्यपुत्र अश्वत्थामा, धनुर्धारी कर्ण, भूरिश्रवापुत्र सोमदत्त, विकर्ण और सहस्रो अन्य महारथियों के साथ युद्ध कर उनको अपने जीवित रहने की आशा है तो वे युद्ध के लिए तत्पर हो जाएं। अन्यथा उनका मार्ग वनों की ओर जाता है। वहां साधु, सन्त-महात्मा उनको कथा-कीर्तन सुनाने के लिए तैयार बैठे हैं।"

मैं मुस्करा कर उठा और मैंने पांडवों के शिविर में जाने की तैयारी कर ली।

हस्तिनापुर के बाहर कौरवों ने सैनिक शिविर खोल दिया था और देश भर में अपने पक्ष के राजाओं को दुर्योधन ने अपने-अपने सैन्यबल के साथ आने का निमन्त्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेज दिया था।

सैनिक-शिविर में सैनिकों के ठहराने की व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही थी।

दूसरी ओर पांडवों का शिविर भी खुला हुआ था। परन्तु अभी सेना का जमाव नहीं हुआ था। यह कदाचित् इस कारण कि युधिष्ठिर अभी भी इस आशा में था कि उसकी मांग स्वीकार हो जायेगी।

मैं युधिष्ठिर के सामने उपस्थित हुआ। उसने मेरा आदर-सत्कार किया। मैंने कहा, "महाराज धृतराष्ट्र ने आपके सन्देश का उत्तर भिजवाया है। आप ध्यानपूर्वक सुनें।

"आप धर्मात्मा हैं, साधु स्वभाव हैं; अपने परिवार वालों से स्नेह और प्रेम रखते हैं। आप शान्तिप्रिय हैं। इससे आपकी प्रवृत्ति के अनुरूप ही महाराज ने आपको सन्देश भेजा है।

"महाराज का कहना है कि दुर्योधन को पिछले तेरह वर्ष तक चक्रवर्ती सम्राट् बन विचरने का स्वभाव पड़ गया है। इतने वर्षों के पश्चात् यदि उसको सम्राट्-पद से च्युत किया गया तो उसको दुःख होगा और ऐसा करने से उसके साथ अन्याय हो जायेगा।

"उनका यह भी कहना है कि आपको वनों में घूमने का स्वभाव पड़ चुका है। आप तेरह वर्ष तक अकिंचन की भांति वनों में रह चुके हैं। इस कारण यदि आप पुनः वन को लौट जाएंगे तो न आपको किसी प्रकार का दुःख होना चाहिये, न ही आपसे किसी प्रकार का अन्याय हो गया मानना चाहिए।

"महाराज धृतराष्ट्र यह सुझाव भेजते हैं कि युद्ध-जैसी भयंकर बात जिसमें कौन मरेगा और कौन जीवित रहेगा, कोई नहीं जानता, जिसमें मरने वाले और मारने वाले भी बन्धु-बान्धव हैं, जिसमें आप विजयी होंगे तब भी अपनों को ही मारकर विजयी हो सकेंगे, आप-जैसे धर्मपरायण सन्त जनों के लिए ठीक नहीं है।

"इस युद्ध में चारों ओर विनाश-ही-विनाश दिखाई देता है।

"यदि तो आपने कौरवों को मार डाला तो आप अपयश के भागी होंगे। और यदि आप मारे गये तो भी आप वे सब पुण्य-कर्म जो आपने अभी करने हैं, कर नहीं सकेंगे। शरीर के रहते हुए ही पुण्य-कर्म कर पुण्य-लोक प्राप्त कर सकते हैं।

"अतः महाराज धृतराष्ट्र का आग्रह है कि युद्धरूपी पाप मत कीजिए। वैसे भी धर्मज्ञ लोग भाग्य से परास्त हो जाते हैं। अपना सुख-दुःख विचार करके आप युद्ध कदापि न करें।"

धृतराष्ट्र का सन्देश देकर मैंने कहा, "मेरी अनुपस्थिति में आप इस सन्देश पर विचार कर लीजिये और कल प्रातःकाल तक अपना निर्णय मुझे बता दीजिये।"

इतना कह मैं उठकर अपने ठहरने के स्थान को लौट गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: 13 :

अगले दिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण मेरे पास आये और कहने लगे, ''तात्! आपने जो सन्देश कल दिया है उसे सुनकर युधिष्ठिर पश्चाताप करते रहे हैं और पुनः वन को जाने को तैयार हो गये हैं। बड़ी कठिनाई से उनको कर्त्तव्य का ज्ञान कराया गया है।''

मैं हँस पड़ा, परन्तु चूंकि मैं दूत था, इस कारण मैंने उत्तर नहीं दिया। श्रीकृष्ण पुनः बोले, ''चलिये, उनका उत्तर तैयार है। परन्तु एक बार पुनः आपने कल वाला सन्देश सुनाया तो निश्चय जानिये कि पांडव वैरागी हो जाएंगे।''

''भगवन्! आपके रहते वे कैसे कर्त्तव्य-विमुख हो सकते हैं? कर्त्तव्य ज्ञान के बाद अब वे दृढ़ निश्चयी होकर युद्ध कर सकेंगे।''

मैं युधिष्ठिर के सामने उपस्थित हुआ तो उन्होंने कहा, ''महाराज धृतराष्ट्र को हमारा प्रणाम कहें और तदनन्तर कहें कि महाराज, भूल से आपको जो उपदेश दुर्योधन को देना चाहिए था, आपने हमें दे दिया है। अतः यही उपदेश आप दुर्योधन को दें और हमें अनुमति दें कि हम इन्द्रप्रस्थ जाकर अपना राज्य-कार्य सम्भालें। हम श्रीकृष्ण को आपके पास भेज रहे हैं जिससे स्थिति स्पष्ट हो सके।''

न तो धृतराष्ट्र और दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ का राज्य पांडवों को लौटाने को तैयार हुए और न युधिष्ठिर वन को जाने को तैयार हुआ। अतः अब युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। इस पर भी श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा होने लगी।

श्रीकृष्ण आये और सभा में उपस्थित हो महाराज धृतराष्ट्र को सम्बोधन कर कहने लगे—

''भरतनन्दन! मैं आज आपके पास इस कारण आया हूं कि कौरव और पांडवों में नर-संहार किये बिना ही सन्धि हो जाये।

''मैं आपको आश्वासन देता हूं कि जैसा भी निर्णय मैं यहां करके जाऊंगा, वह पांडवों को मान्य होगा। आप अपने पुत्रों को अपने वश में करिये और उनसे धर्म तथा न्याय का पालन कराइये। आप कौरव पक्ष की ओर से बात करिये और मैं पांडव-पक्ष की ओर से अधिकार युक्त बात करता हूं।

''देखिये, जुआ खेलने के दिन जब सभी दाँव अन्याययुक्त मानकर अमान्य कर दिये गये थे, उस समय आपके आग्रह पर युधिष्ठिर ने अन्तिम दाँव लगाना स्वीकार किया था। वह दाँव भी युधिष्ठिर हार गये थे। उस दाँव में यह शर्त थी कि हारने पर युधिष्ठिर इत्यादि बारह वर्ष तक वन में रहेंगे और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करेंगे। यह शर्त पांडव पूरी कर चुके हैं। अब आप युधिष्ठिर को अनुमति दें कि वह अपना राज्य, जो आप द्वारा निर्धारित शर्त के अनुसार उनका हो गया है, ले लें।

''यदि आपने अपने पुत्रों को धर्म और न्याय की प्रेरणा न दी तो युद्ध होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस युद्ध में धर्म की जय होगी और ये सब नरेश जो इस समय इस सभा में शोभा पा रहे हैं, मृत्यु को प्राप्त होंगे। इनकी यह शोभा, यह सजधज, सब धूल में मिल जायेगी और यह धर्म का प्रतिपादन करते हुए नहीं, प्रत्युत अधर्म कर्म का समर्थन करते हुए।

"यदि कौरवों ने यह प्रस्ताव अमान्य किया, तो इस धरा पर प्रलय मचेगी और इस सब पाप का उत्तरदायित्व आप पर होगा।"

सब सभ्य गण मन्त्रमुग्ध, श्रीकृष्ण का प्रवचन सुन रहे थे। जब वे अपना वक्तव्य देकर बैठ गये, तब भी सब शान्त बैठे रहे। सबके अधर बन्द थे। सबकी आँखें कृष्ण के तेजोमय मुख को देख रही थीं। जब कृष्ण ने सबको मौन देखा तो पुनः उठकर कहा, "भरतनन्दन महाराज धृतराष्ट्र! मैं कल दिन चढ़ने के एक प्रहर के भीतर अपने इस निवेदन का उत्तर चाहूंगा।"

इतना कह कृष्ण ने हाथ जोड़ सबको नमस्कार किया और सब के देखते-देखते वे सभा-भवन से निकल रथ पर सवार हो, विदुर जी के आवास की ओर चल पड़े। वे वहीं ठहरे हुए थे।

इस समय मुझे सूचना मिली कि श्रीकृष्ण के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा रहा है। उन्हें राज्य-प्रासाद में भोजन का निमन्त्रण दिया गया तो उन्होंने इन्कार कर दिया। कदाचित् उन्हें भास हो गया था कि कहीं उनके भोजन में विष न मिला दिया जाये।

अगले दिन श्रीकृष्ण पुनः सभा में उपस्थित हुए और महाराज को सम्बोधन कर बोले, "महाराज्! मैं अपने कल के प्रस्ताव का उत्तर लेने आया हूं।"

धृतराष्ट्र ने अत्यन्त दयनीय मुद्रा बनाकर दुर्योधन को कहा, "राजा दुर्योधन! उत्तर दो पांडवों के दूत को।"

दुर्योधन उत्तर देने के स्थान से उठकर सभा-भवन के बीचों-बीच आकर खड़ा हो गया। उसके सब भाई भवन के द्वार को रोककर खड़े हो गये। शकुनि और दुःशासन तथा कर्ण और विकर्ण ने मिलकर कृष्ण को पकड़ लिया। दुर्योधन ने कहा, "कृष्ण! तुम मेरे बन्दी हो। अपने पिता वासुदेव की भांति तुम बन्दीगृह में रहोगे।"

"मैंने क्या अपराध किया है?" कृष्ण ने पूछा।

"सब झगड़े की जड़ में तुम हो।" इसके उपरान्त दुर्योधन ने ललकार कर कहा, "ले जाओ इसको और बन्दीगृह में डाल दो।"

दुर्योधन के भाईयों ने खड्ग नग्न कर लिए। कृष्ण इस समय मुस्करा रहे थे। उन्होंने हंसते हुए कहा–

"दुर्बुद्धि दुर्योधन! तू भूल से मुझको अकेला समझ रहा है, इसलिए तू मुझको पकड़कर बन्दी बनाना चाहता है। यह तेरा अज्ञान है। देख।"

ऐसा कहते-कहते श्रीकृष्ण अट्टास करने लगे। ज्यों ही श्रीकृष्ण ने हंसना आरम्भ किया, उनके हाथों को पकड़े हुए चारों वीर उनसे दूर जाकर भूमि पर ऐसे गिरे मानो उनको किसी ने भूमि पर पटक दिया हो। श्रीकृष्ण के शरीर से बहुत तीव्र प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलने लगा और वहां उपस्थित सबकी आंखें मुंद गईं। मेरी भी आंखें बन्द हो गईं। कृष्ण हंसते हुए दूर जाते सुनाई दिए। उनका हंसने का शब्द दूर और दूर होता जा रहा था। अन्त में शब्द बन्द हो गया। मैंने साहस कर आंखें खोली तो वह प्रकाश वहां नहीं था। श्रीकृष्ण भी नहीं थे। कौरव भूमि पर ऐसे लोट-पोट हो रहे थे, मानो उनको पक्षाघात हो गया हो।

महाराज धृतराष्ट्र तो कुछ भी देख नहीं सकते थे। उनके मुख पर विस्मय था और वे कुछ बोल नहीं रहे थे। दुर्योधन भूमि पर बैठा आंखों के आगे हाथ रखे हुए था। भीष्म तथा द्रोण भी आंखों को हाथों से बन्द किए हुए थे।

मैंने महाराज से कहा, "महाराज! वह गए।"

"कौन! कृष्ण? और दुर्योधन?" धृतराष्ट्र ने पूछा।

"दुर्योधन और उसके सब भाई अचेत पड़े हैं।"

हमें बातें करते सुन, भीष्म और द्रोण ने भी आंखें खोल लीं। भीष्म ने कहा, "यह योग का चमत्कार है।"

"क्या चमत्कार है?" धृतराष्ट्र ने पूछ लिया।

मैंने पितामह की बात की व्याख्या करते हुए कहा, "महाराज! जब आपने राजकुमार से यह कहा कि वह श्रीकृष्ण की बात का उत्तर दो तो राजकुमार ने शकुनि इत्यादि को संकेत किया और दुःशासन, शकुनि तथा कर्ण और विकर्ण ने श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का यत्न किया। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को अपना बन्दी घोषित कर दिया। यह घोषणा सुन श्रीकृष्ण अट्टहास करने लगे। इस समय उनके शरीर के बिना हिले-डुले कर्णादि जो उनकी बाँहों को पकड़े हुए थे ऐसे दूर जा गिरे, जैसे किसी ने उनको धक्का देकर गिरा दिया हो। तदुपरान्त इस पूर्ण सभा भवन में एक तीव्र और अद्वितीय आलोक छा गया। हम सब की आंखें बन्द हो गयीं।

"जब श्रीकृष्ण की हंसी का स्वर दूर अन्तर में विलीन हो गया तो मैंने आंखें खोलीं और इन सब को भूमि पर अचेत पड़े देखा।"

"दुर्योधन!" धृतराष्ट्र ने पूछ लिया, "तुमने एक दूत को पकड़ने तथा बन्दी बनाने का यत्न क्यों किया?"

उत्तर भीष्म ने दिया—"यह दुर्बुद्धि, बाल-बुद्धि, आग को कपड़े में बांधने लगा था।"

इतना कह भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य उठकर सभा-भवन से निकल गये।

सभा विसर्जित हुई और दुर्योधनादि अति लज्जित हो अपने-अपने आवास में चले गये।

श्रीकृष्ण के भाई श्रीबलराम दुर्योधन के समधी थे। इस कारण उनकी सहानुभूति दुर्योधन के साथ थी। कृष्ण को भय था कि कहीं बलराम भी दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करने न पहुंच जायें। अतः उन्होंने बलराम को युद्ध से तटस्थ करने के लिए घोषणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दी कि वह स्वयं भी युद्ध में शस्त्र नही उठायेंगे। साथ ही कह दिया कि एक ओर उनकी सेना होगी तो दूसरी ओर वे अकेले बिना शस्त्र के होंगे।

इस पर अर्जुन ने कह दिया कि वह शस्त्रहीन होने पर भी कृष्ण को अपने पक्ष में चाहता है। उसके लिये कृष्ण का मूल्य लाखों सैनिकों से बढ़ कर था।

: 14 :

युद्ध की घोषणा हो गई। दुर्योधन को एक बात का सन्तोष था कि श्रीकृष्ण ने घोषणा कर रखी थी कि वह युद्ध में शस्त्र नहीं उठायेंगे इस कारण श्रीकृष्ण के यौगिक चमत्कार का उस ५र कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भीष्म और द्रोण तो यह कहते थे कि उन्होंने दुर्योधन का अन्न खाया है, इस कारण यदि वह कहेगा तो उसके पक्ष में युद्ध करेंगे।

धृतराष्ट्र की इच्छा थी कि युद्ध का आंखों देखा हाल मैं प्रतिदिन उनको सुनाऊं परन्तु युद्ध भूमि हस्तिनापुर से लगभग अस्सी कोस के अन्तर पर थी। श्रीकृष्ण और दुर्योधन दोनों ने कुरुक्षेत्र का मैदान युद्ध के लिए निश्चय किया था।

इतनी दूर प्रतिदिन जाना और युद्ध के बाद आकर महाराज को उसका हाल सुनाना और अगले दिन पुनः जाना अत्यन्त कठिन था। साथ ही युद्ध-क्षेत्र में मैं तभी जा सकता था यदि दोनों पक्ष मुझे तटस्थ स्वीकार करें और वहां का समाचार जानने के लिए घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता दें।

इसके लिये महर्षि व्यास ने दुर्योधन तथा युधिष्ठिर से बात की और मुझे वहां घूमने-फिरने की स्वीकृति मिल गई।

देवेन्द्र ने मेरी दूसरी समस्या हल कर दी। मुझे आने-जाने के लिए एक छोटा-सा विमान दे दिया। उस विमान में दिव्य यन्त्र लगे थे जो युद्ध का सारा चित्र तथा समाचार देवलोक भेज सकते थे। देवेन्द्र स्वयं युद्ध का विवरण जानना चाहते थे। इस कारण उसने सहर्ष वह विमान मुझे दे दिया।

युद्ध के दिन मैं प्रातःकाल ही अपने विमान में युद्ध-भूमि में जा पहुंचा। अठारह अक्षौहिणी सेना पूर्ण शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित खड़ी थी। एक ओर कौरवों की सेना थी, जिसकी गणना ग्यारह अक्षौहिणी की गई थी तथा दूसरी ओर पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना थी। कौरवों की सेना के सेनापति भीष्म जी थे और पांडवों के सेनापति धृष्टद्युम्न थे।

अब श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी के रूप में वहां आये। कौरवों की ओर से शंख ध्वनि तथा युद्ध का आह्वान होने लगा था। अर्जुन तथा युधिष्ठिर इत्यादि ने भी अपना शंख बजाया। अर्जुन ने कहा, "श्रीकृष्ण! आप मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में ले चलें। मैं देखना चाहता हूं कि कौरवों के पक्ष में कौन-कौन से योद्धा आये हैं जिनसे हमें युद्ध करना है।"

श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ लेकर दोनों सेनाओं के मध्य में जा पहुंचे। मैं भी अपने विमान में बैठकर युद्ध आरम्भ होने की प्रतीक्षा करने लगा। इस समय मैंने देखा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष छोड़ दिया है। मैंने ध्वनि पकड़ने वाला यन्त्र उनकी ओर किया तो मुझे अर्जुन के वचन सुनाई पड़ने लगे। अर्जुन कह रहा था, ''हे कृष्ण, युद्धक्षेत्र में दोनों ओर हमारे सगे-सम्बन्धी तथा कुटुम्बी लड़ने-मरने के लिए तैयार खड़े हैं। वह देखो, हमारे पितामह, हमारे गुरु द्रोणाचार्य, हमारे मामा शल्य तथा अन्य सभी बन्धु-बान्धव हैं। इनको देख कर मेरे शरीर में कम्पन तथा रोमांच हो रहा है।

''मेरे अंगशिथिल पड़ रहे हैं, मेरा गांडीव हाथ से गिरने लगा है। मैं समझता हूं कि मैं ठीक नहीं कर रहा। भला इन स्वजनों को मारकर मुझे क्या मिलने वाला है? इस युद्ध में सम्पूर्ण कौरव-कुल नाश को प्राप्त हो जायेगा। कुल नाश से धर्म का लोप हो जाता है। कुल की स्त्रियां दूषित हो जाती हैं।

''और यह सब किसलिये? जरा-सा राज्य प्राप्त करने के लिये। कृष्ण, यदि मुझे तीन लोकों का राज्य भी मिल जाये तो भी मैं युद्ध नहीं करूंगा और अपने बान्धवों को नहीं मारूंगा। मुझ निहत्थे को ये मेरे बन्धु मार भी डालें, तब भी मैं युद्ध नहीं करूंगा।'' इतना कह अर्जुन ने गांडीव धनुष रख दिया और जाने को तैयार हो गया।

अब कृष्ण ने डांटते हुए अर्जुन को कहा, ''अर्जुन, यह तुझे मोह कैसे हो गया? तू तो नपुंसकों जैसी बातें करने लगा है! इनको सम्बन्धी कह रहा है और ये सभी अधर्मी हैं, पापी हैं। इनका नाश ही तेरा धर्म है। उठ और युद्ध के लिये तैयार हो जा।''

अर्जुन इस डाँट पर लज्जित तो हुआ परन्तु उसका समाधान नहीं हुआ। उसने कहा, ''कृष्ण! धर्म के विषय में भ्रम हो जाने के कारण यह कायरता मेरे अन्दर उत्पन्न हुई है। आप मुझे बतायें, नर हत्या कैसे धर्मयुक्त हो सकती है?''

कृष्ण ने कहा, ''अर्जुन, तू पण्डितों जैसी बातें करता है। बता यह हत्या किसकी होती है? इस शरीर की न? यह शरीर तो वैसे ही नाशवान् है। आज नहीं तो कल। बचपन, यौवन, बुढापा और फिर मृत्यु। इस मृत्यु को कोई नहीं रोक सकता। और इस नाशवान् शरीर के भीतर की आत्मा को काई मार नहीं सकता। यह अमर है। यह न पैदा होता है, न मरता है। इसे अग्नि भी जला नहीं सकती।

''ये कौरव अधर्मी हैं। इनका संसार में रहना ठीक नहीं और एक क्षत्रिय होने के कारण यह तुम्हारा धर्म है कि इनका नाश करो। यदि तुम अपने धर्म का पालन नहीं करोगे तो निन्दा के भागी होगे और निन्दा एक क्षत्रिय के लिये मृत्यु से भी बढ़कर होती है।

''अर्जुन! कर्म के बिना मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता। कर्म करो, परन्तु फल की इच्छा मत करो। उसे परमात्मा पर छोड़ दो। तब कैसे भी घोर कर्म करोगे, तुम्हें बांधेंगे नहीं और तुम्हें किसी प्रकार का पाप नहीं लगेगा।''

इस प्रकार श्रीकृष्ण के समझाने पर अर्जुन का मोह नष्ट हो गया और उसने गांडीव उठा लिया।

युधिष्ठिर युद्ध आरम्भ होने से पूर्व बड़ों का आशीर्वाद लेने के विचार से रथ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतर कौरवों की ओर चला गया और भीष्म पितामह को प्रणाम कर बोला, ''पितामह! आप हमारे विपक्ष में हैं इस पर भी मैं आपसे आशीर्वाद प्राप्त करने आया हूं।

''मैं जानता हूं कि आप अजेय हैं, इस पर भी मेरा पक्ष धर्म का है। अतः आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, जिससे मैं विजयी हो सकूं।''

युधिष्ठिर के इस प्रकार आशीर्वाद मांगने पर भीष्म जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे बोले, ''पुत्र! तुम ठीक कहते हो, इस युद्धक्षेत्र में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो मुझको मार सके। इन्द्र स्वयं भी मुझे पराजित नहीं कर सकता। इस पर भी मैं तुमसे प्रसन्न हूं और तुम्हें अनुमति देता हूं कि तुम युद्ध करो और विजय पाओ।''

इसके उपरान्त युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के पास गया और आशीर्वाद मांगने लगा। द्रोणाचार्य ने भी प्रसन्न होकर कहा, ''यह सत्य बात है कि मैं कौरवों के साथ अर्थ में बंधा हुआ हूँ। इसी कारण आज नपुंसकों की भांति पूछता हूं कि इस युद्ध करने की बात छोड़कर और बताओ मैं तुम्हारा क्या हित कर सकता हूं? मैं यह जानता हूं कि जहां धर्म है, वहां कृष्ण हो सकता है और जहां कृष्ण पहुंच जाता है, वहां विजय निश्चित है। वैसे मुझे कोई ऐसा शत्रु दिखाई नहीं देता जो मुझे रथ पर बैठे बाण चलाते हुए को मार सके। हां जब मैं हथियार डालकर बैठ जाऊँ, उस अवस्था में कोई श्रेष्ठ योद्धा ही मुझको मार सकता है।''

युधिष्ठिर इसी प्रकार अपने मामा शल्य को भी नमस्कार करने गया और उनसे भी आशीर्वाद और अपने हित की कामना का वचन ले आया और फिर अपने पक्ष में आकर रथ पर सवार हो गया।

युधिष्ठिर और अन्य पांडवों के इस व्यवहार से सब श्रेष्ठजनों के चित्त गद्-गद् प्रसन्न हो गए। मन-ही-मन वे पांडवों को आशीर्वाद देने लगे और युद्ध में उनके विजयी होने की कामना करने लगे।

इसके उपरान्त सबसे पहले युधिष्ठिर ने अपने शंख की ध्वनि की। उसके अनन्तर सभी मनस्वी पुरुषों ने सैकड़ों और सहस्रों बड़ी-बड़ी भेरियों तथा गोदुग्ध के समान श्वेत शंखों को बजाया।

एक ओर से भीष्मजी सेना को लेकर आगे बढ़े और दूसरी ओर से भीम सेना सहित आगे बढ़ा।

घमासान युद्ध छिड़ गया। महारथियों से महारथी, रथियों से रथी और सैनिकों से सैनिक युद्ध करने लगे।

इस दिन के युद्ध में एक बात यह हुई कि भीम के बाण से दुर्योधन अचेत हो गया। उसको शिविर में लौट जाना पड़ा।

साधारण सैनिक भी घमासान लड़ाई लड़ने लगे थे। जब महारथी परस्पर लड़ना छोड़ देते थे, तब वे साधारण सैनिकों की हत्या करने लग जाते थे। इस कार्य में भीष्मजी ने भी खूब हाथ रंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब भीष्मजी साधारण सैनिकों की हत्या कर रहे थे, तो विराट के पुत्र श्वेत ने भीष्म को ललकारा—"क्यों इन छोटे साधारण सैनिकों पर चातुर्य दिखाते हो पितामह!"

"सावधान हो जाओ।" इतना कह उसने शिव से प्राप्त की हुई शक्ति भीष्मजी पर छोड़ी। वह शक्ति आकाश से विद्युत की भांति चमकती हुई भीष्मजी की ओर आने लगी तो भीष्मजी ने उस पर कई बाण चलाए और वह शक्ति मार्ग में ही टूट-फूट गई।

इससे श्वेत को क्रोध आ गया और वह अपनी गदा ले रथ से उतर आया। उसने गदा आकाश में घुमाकर भीष्म जी पर छोड़ी। भीष्मजी समझ गए कि उसकी गदा को बाणों से नहीं काटा जा सकता। वे भी रथ से कूदकर एक ओर हट गए। गदा रथ पर लगी तो रथ चूर-चूर हो गया। सारथी और अश्व मारे गए। इस प्रकार भीष्मजी को भूमि पर आने के लिए विवश कर श्वेत खड्ग ले उन पर कूद पड़ा। इस प्रकार दोनों को द्वन्द्व-युद्ध करते देख दोनों पक्षों के लोग दोनों की सहायता के लिए आ गए। भूमि पर खड़े-खड़े भीष्म पितामह ने अपना धनुष-बाण छोड, श्वेत को रोकने का यत्न किया परन्तु श्वेत इतनी तीव्र गति से आया कि बाण छोड़ने से पूर्व ही उसने गंगानन्दन का धनुष काट दिया।

इस प्रकार भीष्म को निःसहाय देख एक नए रथ पर उनको बैठा दिया गया। श्वेत भी अब रथ पर चढ़ गया और पुनः युद्ध होने लगा। वास्तव में श्वेत अवसर खो चुका था। शिव से प्राप्त अचूक शक्ति तथा गदा निष्फल हो चुकी थी। अब गंगानन्दन ने उस पर से अपने विशेष वाण से प्रहार किया। वह बाण श्वेत का कवच भेद कर उसके हृदय-स्थल पर लगा और उसकी मृत्यु हो गई।

इस समय दिन समाप्त हो चुका था। युद्ध बन्द करने का निनाद किया गया और सेनाएं अपने-अपने शिविरों को लौट गईं।

: 15 :

अगले दिन मैं जब युद्ध भूमि पर पहुंचा तो पांडव-सेना क्रौंचारुण्य व्यूह में खड़ी देखी।

उस दिन भीष्मजी को पांडवों के किसी-न-किसी रथी ने घेरे रखा। उनको युद्ध कर नर-संहार करने का अवसर ही नहीं दिया गया। पहले अर्जुन ने भीष्मजी का मार्ग अवरुद्ध रखा। ततूपश्चात् धृष्टद्युम्न और अर्जुन दोनों ने मिलकर भीष्मजी को पीछे हटा दिया। भीष्मजी को इस प्रकार व्याकुल देख दुर्योधन, अश्वत्थामा और कृपाचार्य भीष्म जी के स्थान पर खड़े हो गये। दोनों पांडव महारथी उनसे निपटने लगे तो भीष्म ने पुनः नरसंहार आरम्भ कर दिया। भीम उस समय कलिंग के राजकुमार को यमपुरी पहुंचा कर हाथियों की सेना पर पिल पड़ा था। इस समय भीम ने भीष्म को साधारण सैनिकों पर आतंक फैलाते हुए देख लिया। अतः उसने अपने रथ को भीष्मजी की ओर घुमा दिया। दोनों में युद्ध होने लगा। भीम ने पितामह पर शक्ति से प्रहार किया, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगानन्दन ने उस शक्ति को काट दिया। भीम ने अपनी गदा से प्रहार किया तो भीष्मजी को रथ बदलना पड़ा। नवीन रथ पर भीष्मजी आरूढ़ हुए तो भीम और सात्यकि ने मिलकर उन पर आक्रमण कर दिया। गंगानन्दन के इस नवीन रथ का सारथि मारा गया तो अश्व नियन्त्रण से बाहर हो भीष्मजी को भगाकर उनके शिविर में ले गये। गंगानन्दन का पलायन पांडव सेना को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो वे हार मानकर रण छोड़ गये हैं। अतः उन्होंने अपने शंख बजा-बजाकर हर्षोल्लास किया।

इस दिन विजय-श्री भीम के हाथ में रही। गंगाननदन पुनः युद्ध की समाप्ति तक रण-क्षेत्र में नहीं लौट सके। इस दिन अर्जुन और अभिमन्यु ने भी अमित पराक्रम दिखाया।

प्रतिदिन, मैं नियम से युद्ध-भूमि में जाता था और वहां से कभी निराशयुक्त और कभी आशामय समाचार लेकर आता था। मैं नित्य श्रीकृष्ण तथा भीष्म जी से मिला करता था।

युद्ध में लाखों वीर नित्य गति को प्राप्त हो रहे थे। तीसरे दिन तो कौरव-सेना में भगदड़ मच गई। दुर्योधन कुपित हो भीष्म जी के पास पहुंचा और उनको कहने लगा—"पितामह! आप और द्रोणजी के जीवित रहते मेरी यह दशा तो चिन्तनीय है। लोग यही कहेगे कि आपने मुझसे छलना की है। मेरी ओर से युद्ध करते हुए प्रतिपक्षी की सहायता की है।"

इस पर भीष्म और द्रोण ने मिलकर पुनः पांडव-सेना पर आक्रमण कर दिया। इस बार पहले दिन की विजय के उल्लास में पांडव कुछ शिथिल पड़ गये थे। इससे उनकी सेना में महान् संहार आरम्भ हो गया। इस दिन भीष्म ने किसी महारथी पर आक्रमण न कर पांडव सेना के संहार में ही रुचि दिखाई।

कृष्ण भीष्मजी की इस नीति से क्रुद्ध हो उठा। वह अर्जुन का श्वेत अश्वों वाला रथ भीष्मजी के सामने ले गया, परन्तु उन्होंने एक दो वाणों से इनका सत्कार कर पुनः सेना में आतंक फैलाना आरम्भ कर दिया। यदि कहीं भीम सामने आ जाता तो गंगानन्दन उसको छोड़ उधर चला जाता, जिधर सेना से सेना लड़ रही थी। जहां भी भीष्म पहुंचते पांडव-सेना में भगदड़ मच जाती और कौरव-सेना उसको भागते देख प्रसन्नता के नारे लगाने लगती थी।

जब श्रीकृष्ण ने भीष्मजी की यह नीति समझी तो उनको क्रोध चढ़ आया। वह यद्यपि इस नीति को कायरता की नीति मानता था; परन्तु इससे पांडव-सेना की अपार हानि हो रही थी। कृष्ण ने अर्जुन को कहा, युद्ध जीतना है तो भीष्मजी को इन निरपराध क्षत्रियों की हत्या करने से रोको।

अर्जुन ने कई बार यत्न किया, परन्तु भीष्म जी उसको छोड़ सेना की ओर मुड़ जाते थे। उन्होंने युद्ध में विजय पाने का यही उपाय समझा कि युधिष्ठिर को सेना-रहित कर दिया जाये। इस प्रकार भीष्मजी को बार-बार अर्जुन के विरोध में हटते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख, क्रोध में आ कृष्ण ने अपना सुदर्शन-चक्र निकाल लिया। अर्जुन ने यह दखा तो श्रीकृष्ण को युद्ध में लड़ने का वचन-भंग न करने देने के लिए उनके पांव पकड़ लिए और कहा—"मैं स्वयमेव यह कार्य सम्पन्न करूंगा। आप अपना वचन-भंग न करिये।"

इसके उपरान्त तो अर्जुन ने भीष्म को अपने साथ युद्ध करने के लिए विवश कर दिया। उसने एक के बाद दूसरा और दूसरे के अनन्तर तीसरा भीष्मजी का धनुष तोड़ डाला। भीष्मजी को इस दिन भी धनुष-विहीन होकर रण से लौटाना पड़ा। और तब युद्ध के चौथे दिन कौरवों की सेना का इतना संहार हुआ कि दुर्योधन निराश तथा खिन्न मन शिविर को लौट गया। सेना में भगदड़ मच गई।

पांचवे, छठे और सातवें दिन भी स्थिति सर्वथा निराशजनक रही। नवें दिन दुर्योधन अचेत ही युद्ध भूमि से लौटकर शिविर को चला गया। उस दिन इतना संहार हुआ कि मृतकों के शवों से रणभूमि पट गई थी।

नवें दिन युद्ध का परिणाम देखने के लिए मैं दुर्योधन के तथा श्रीकृष्ण के शिविर में गया।

जिस समय मैं राजकुमार दुर्योधन के शिविर में पहुंचा तो भीष्म पितामह वहां दुर्योधन का समाचार लेने पहुंचे हुए थे।

दुर्योधन सचेत था और भीष्मजी से कह रहा था, "पितामह! यह कैसे हो गया? मैंने सुना है कि सुर्यास्त से पूर्व ही सेना रणभूमि छोड़ शिविर में आ छिपी है?"

भीष्मजी ने कहा—"हाँ वत्स! अभिमन्यु के युद्ध-कौशल को देख मैं भी हतोत्साह हो गया था। कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवीर्य और भूरिश्रवा उसको घेरे हुए थे, परन्तु उसका रथ चलाने वाला सारथि और उनके वाणों की वर्षा किसी को समीप फटकने नहीं देते थे। जब मद्रराज घायल हुए तो सेना में भगदड़ मच गई।"

इस पर दुर्योधन ने क्रोध से तथा दुःख से विलाप करते हुए कहा, "पितामह! पांडवों ने मेरे शूर सैनिकों को मार डाला। मेरी सूचना है कि मेरी आधी से अधिक सेना मारी जा चुकी है और यह सब आपके सेनापतित्व के काल में हो रहा है।"

भीष्मजी को ऐसा अनुभव हुआ मानो दुर्योधन उन पर आरोप लगा रहा है। इस कारण दुर्योधन के इस विलाप पर वे गम्भीर भाव धारण कर बोले, "दुर्योधन! अब समय आ गया कि तुम नये सेनापति का निश्चय कर लो। कल के उपरान्त मैं युद्ध नहीं कर सकूंगा।"

यह कह भीष्म अपने शिविर में चले गये।

अगले दिन दुर्योधन ने विशेष उत्साह से युद्ध में प्रवेश किया। कौरव रथी तथा महारथी अपनी सेना के संहार का प्रतिकार लेने के लिए सामान्य सैनिकों पर टूट पड़े। कृष्ण ने धृष्टद्युम्न तथा युधिष्ठिर को अपनी सेना की रक्षा करने को कहकर दूर भेज दिया। स्वयं कृष्ण अर्जुन का रथ लेकर भीष्मजी की ओर चल पड़े। द्रुपद, भीम, अर्जुन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिखंडी, तथा विराट ने बहुत-सी सामान्य सेना सहित भीष्मजी को घेर लिया।

आज शिखंडी सबसे आगे भीष्मजी से लड़ने के लिए आ गया। जब शिखंडी ने भीष्मजी को ललकारा तो भीष्मजी ने अट्टहास करते हुए धनुष रख दिया और कहा, "अरे! तुझ नारी के सामने मैं हथियार नहीं उठाऊंगा।"[1]

"और मैं तुमको मारे बिना नहीं छोड़ूंगा।"

शिखंडी[2] ने भीष्मजी पर बाण वर्षा आरम्भ की, परन्तु उन बाणों का कुछ विशेष प्रभाव भीष्म पर नहीं हो रहा था। इस समय एक ओर हटकर अर्जुन ने अपने गांडीव धनुष से भीष्मजी पर बाण छोड़ने आरम्भ कर दिये। कृष्ण अर्जुन को कहा रहा था, "धनंजय! शीघ्रता करो, इस अवसर को चूको नहीं।"

देखते-देखते अर्जुन ने पितामह का पूर्ण शरीर अपने बाणों से बींध डाला। इन बाणों की चोट पितामह सह नहीं सके और वे लुढ़ककर रथ से नीचे गिर गये। इस प्रकार भीष्मजी को भूमि पर लोट-पोट होते देख पांडवों ने विजय-दुंदुभि बजा दी। कौरव-सेना में त्राहिमाम् होने लगी।

युद्ध बन्द हो गया और पितामह के चारों ओर सब मुख्य-मुख्य कौरव-पांडव एकत्रित हो गये।

भीष्मजी का पूर्ण शरीर वाणों से छिदा हुआ था और लगभग उन पर ही वे लेटे हुए थे। वाणों की वेदना से भीष्म की आंखें मुंदी हुई थीं। दुर्योधन ने समीप आ आंखों से आंसू बहाते हुए आवाज दी, "पितामह! पितामह!!"

भीष्म ने आंखें खोली और मुख पर मुस्कराहट लाकर कहा, "दुर्योधन! मेरा कार्य समाप्त हुआ। अब मैं युद्ध नहीं कर सकूंगा। अब तुम कोई अन्य सेनापति नियत कर लो।

"मेरा कहा मानो तो युधिष्ठिर से सन्धि कर लो। पर्याप्त नरसंहार हो चुका है।"

इस पर दुर्योधन उनके कथन का उत्तर दिए बिना वहां से चला गया। भीष्मजी ने पुनः आंखें खोलीं तो दुर्योधन के स्थान पर युधिष्ठिर को खड़े देखा।

भीष्मजी ने पूछा, "दुर्योधन कहां है?"

"पितामह! वह चला गया है।"

"महामूर्ख है! समय के लक्षण नहीं देखता। अर्जुन कहां है?"

अर्जुन सामने आया तो भीष्मजी ने हंसते हुए कहा, "वीर! तुम्हारे बाण बहुत

---

2. शिखण्डी के विषय में कहते हैं कि पूर्व जन्म में काशिराज की कन्या अम्बा थी जिसको स्वयंवर से उठाकर भीष्म जी ले आये थे। उसने मन में कामना कर कि वह अगले जन्म में इस अपमान का बदला लेगी, आत्महत्या कर ली थी।

इस जन्म में वह कन्या के रूप में पैदा हुई थी, परन्तु चिकित्सा द्वारा बाद में लड़का बन गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुभ रहे हैं। मैं अभी मरने वाला नहीं। मुझे उत्तरायण की प्रतीक्षा करनी है। तब तक के लिए मेरे लिए अचेत शरशय्या निर्माण कर दो।''

अर्जुन ने मुष्ठीवत् मुख वाले बाणों से पितामह के लिए शय्या निर्माण कर दी। उनके पीने के लिए वहीं, एक बाण से भूमि फोड़ जल निकाल, पितामह की तृष्णा निवारण की।

भीष्म ने तृप्त हो युधिष्ठिर को कहा, ''वीरपुत्र! तुम्हारी विजय हो, मेरी कामना है। दुर्योधन से मैंने कहा है कि वह तुमसे सन्धि कर ले। परन्तु वह चला गया है। इससे मुझको कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि वह संधि नहीं करेगा। भगवान् उसको वीरगति प्राप्त करायेगा।''

युधिष्ठिर ने प्रणाम किया और सजल नेत्रों से कहा, ''पितामह! मुझे आज्ञा करिये। मेरा मार्ग अब किस ओर है?

''धर्मपुत्र! तुम्हारा मार्ग विजय की ओर है। डटकर युद्ध करो और विजय-श्री का भोग करो। यही मेरा आशीर्वाद है।''

जब सब लोग चले गये तो मैं पितामह के पास जाकर पूछने लगा, ''पितामह! महाराज धृतराष्ट्र के लिए कुछ सन्देश है?''

''कुछ नहीं। मैं देख रहा हूं कि वह घोर अंधकार-रूपी नरक को प्रस्थान कर रहा है।''

''परन्तु पितामह! उसने क्या किया है?''

''यों तो हम सब पापी है। हमने परमात्मा के अस्तित्व को भूलकर पाप के पक्ष का अन्न खाया है। आज इस अन्त समय में मैं विचार करता हूं कि यदि मैं धृतराष्ट्र के पक्षपातपूर्ण व्यवहार को देखकर वन में चला जाता तो क्या भूखा मर जाता? मैं विचार करता हूं कि यदि पांडव बारह वर्ष तक वन में रहकर भूखे नहीं मरे तो मैं भी जीवित रह सकता था। झूठे मोह और लोभ में फंसा हुआ मैं धृतराष्ट्र का दूषित अन्न खाता रहा हूं।

''इसी कारण मैंने युद्ध किया है। मैं इस खाए अन्न का मार्जन करना चाहता था। सो आज हो गया। मेरी बुद्धि अब निर्मल है। मैं अपने सब दोष देखकर उनका मार्जन चाहता हूं। मैंने आज भी सन्धि कराने का यत्न किया है। इस विजय के समय भी युधिष्ठिर मेरा कहा मानने के लिए तैयार था, परन्तु मन्दमति दुर्योधन अभी भी युद्ध की निरर्थकता को नहीं देख सका।''

अगले दिन गुरु द्रोणाचार्य को सेनापति बनाया गया। इस दिन महान् संग्राम हुआ। पांडवों के लिए द्रोण कालरूप आ उपस्थित हुए। पांडव-सेना का अतुल संहार हुआ। द्रोणाचार्य की यह प्रतिज्ञा थी कि वह युधिष्ठिर को जीवित पकड़कर दुर्योधन के समक्ष उपस्थित कर देंगे और अर्जुन का यह कहना था कि वह द्रोण को ऐसा करने नहीं देगा। इस कारण पहले दिन सेना की हत्या के अतिरिक्त अन्य कोई परिणाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं निकला।

अगले दिन द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर की रक्षा करने वाले कितने ही महारथियों—सत्यचित्, शतानीक, दृढ़सेन, क्षेम, वसुदान तथा पाञ्चाल-राजकुमार की हत्या कर दी। इस पर भी वह युधिष्ठिर तक नहीं पहुंच सका। इन महारथियों के मारे जाने से पांडव-पक्ष को बहुत क्षति पहुंची।

: 16 :

इसके अगले दिन एक अन्य घटना हो गई। कौरव सेना ने चक्र-व्यूह रचा हुआ था और सुभद्रा-सुत अभिमन्यु उस चक्रव्यूह को भेदने के लिए उसमें घुस गया। एक बार घुसा तो फिर वह निकल नहीं सका। जयद्रथ के षड्यन्त्र ने अन्य पांडव महारथियों को व्यूह में प्रवेश नहीं करने दिया। परिणाम यह हुआ कि अभिमन्यु अकेला आठ महारथियों से घिर गया। अर्जुन उस समय रण-क्षेत्र में कौरवों से दूर युद्ध कर रहा था। यद्यपि युधिष्ठिरादि कई योद्धा अभिमन्यु को व्यूह से बाहर निकालने का यत्न कर रहे थे, परन्तु वे सफल नहीं हो सके।

अभिमन्यु चक्रव्यूह के भीतर प्रविष्ट हो कौरव-सेनाओं का ऐसे संहार कर रहा था जैसे खेतिहर अपनी हंसली से कुशा को काटता चला जाता है। कौरव-सेना का इतना संहार हुआ था और रण-क्षेत्र में सैनिकों के शव इस प्रकार बिखरे पड़े थे, मानो किसी ने यज्ञ वेदी पर कुशा बिछा दी हो।

उस समय अभिमन्यु असुर सेना में अकेले विष्णु की भांति कौरव सेना के खेत-के-खेत काटता जा रहा था। उसने शल्य को मूर्छित कर अश्मक-पुत्र का वध कर डाला। शल्य का भाई भी मारा गया। अभिमन्यु को इस प्रकार संहार करते देख कर्ण और दुःशासन उसे लड़ने के लिए बाहर निकल आए। इस समय अभिमन्यु पर चंडी का आशीर्वाद था और उसके सामने कोई ठहर नहीं सकता था। कर्ण को वहां से पलायन करना पड़ा। दुःशासन मुर्छित हो वहां से शिविर को ले जाया गया।

अभिमन्यु ने व्यूह में जाकर कर्ण के भाई का वध कर दिया। तत्पश्चात् वासतीय, सत्यश्रवा, रुक्मरथ, लक्ष्मण, क्राथ पुत्र, कोशल नरेश तथा बृहद्बल का वध कर दिया। सैकड़ों ही रथी, अतिरथी इस युद्ध में धराशायी हुए। हजारों ही सैनिक उस अकेले वीर ने मौत के घाट उतार दिए। युधिष्ठिर इत्यादि इस सब समय अभिमन्यु की सहायता के लिए व्यूह के भीतर जाना चाहता थे, परन्तु व्यूह के द्वार पर जयद्रथ खड़ा था और व्यूह की रचना ऐसी थी कि कोई भीतर जा नहीं सकता था। परिणाम यह हुआ कि छः महारथियों से घिरा हुआ अभिमन्यु अन्त में मारा गया। जब तक उसके हाथ में अस्त्र था, वह अजेय रहा। उसका रथ टूट गया, उसका धनुष कट गया, उसकी खड्ग टूट गई, तब वह रथ के चक्कों से युद्ध करने लगा। जब ये चक्के भी उसके टूट गये और वह निहत्था हो गया, तब ही वह मारा जा सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांडवों के शिविर में महान् शोक समा गया। अर्जुन अपने पुत्र की हत्या का वृत्तान्त सुन घायल साँप की भांति फूंकारे छोड़ने लगा। अर्जुन को पता चला कि यह षड्यन्त्र जयद्रथ ने रचा है तो उसने यह प्रतिज्ञा की कि अगले दिन सूर्यास्त से पूर्व वह जयद्रथ का वध करके छोड़ेगा, अन्यथा वह स्वयं जलकर भस्म हो जायेगा।

कौरव-शिविर में हर्ष शोक का मिश्रित वातावरण था। जहां अभिमन्यु के मारे जाने से प्रसन्नता हो रही है, वहां इतनी संख्या में रथी, अतिरथी और महारथी मारे गए थे कि वह हर्ष शोक से ढक गया था।

साथ ही यह सूचना जयद्रथ को मिल गई कि अर्जुन ने उसको मार डालने की प्रतिज्ञा कर ली है। यद्यपि दुर्योधन और द्रोणाचार्य ने उसकी रक्षा का उसे आश्वासन दिया था, परन्तु वह भयभीत था।

अगले दिन जयद्रथ द्रोणाचार्य और कौरवों की पूर्ण सेना की संरक्षा में युद्ध में गया और अर्जुन ने भीम की सहायता के साथ आक्रमण कर दिया।

अर्जुन सेना को गाजर-मूली की भांति काटता हुआ जयद्रथ की ओर बढ़ने लगा और द्रोणाचार्य उसके मार्ग में अधिकाधिक सेना खड़ी करता चला गया। इसी के लगभग पूरा दिन व्यतीत हो गया। तीसरा प्रहर जाने लगा और दुर्योधन की दो अक्षौहिणी सेना का संहार हो गया। कौरव और पांडव दोनों जानते थे कि यदि सूर्यास्त तक जयद्रथ को बचाया जा सका तो अर्जुन निःसन्देह प्राण त्याग देगा। ढलते दिन को देख कृष्ण तथा पांडवों की चिन्ता बढ़ रही थी।

इस समय कृष्ण को एक युक्ति सूझी। उसने सुदर्शनचक्र की सहायता से धूल के इतने गुब्बार उड़ाये कि अभी दिन ढलने में आधा प्रहर रहते ही सूर्यास्त का भास होने लगा।

कृष्ण ने सब-कुछ जानते हुए यह विख्यात करा दिया कि सूर्यास्त हो गया। नियमानुसार युद्ध बन्द हो गया। पांडवों की सेना में शोक समा गया और कौरवों ने हर्ष में ढोल-नगारे बजाने आरम्भ कर दिए।

अर्जुन ने अपना रथ छोड़ दिया और अपने को भस्म कर डालने के लिए अग्नि प्रज्ज्वलित कर ली। अर्जुन अग्नि के समीप खड़ा हो गया। कौरव-सेना हर्ष मनाती हुई और पांडव-सेना शोक-निमग्न शिविरों को चली गई। दोनों पक्ष के मुख्य-मुख्य पुरुष अर्जुन को अन्त समय में देखने के लिए अग्नि के चारों ओर खड़े हो गये। जयद्रथ भी अब सेना के संरक्षण से बाहर इस दुःखान्त नाटक को देखने वहां आ खड़ा हुआ। पांडव अश्रु-धारा बहा रहे थे। कर्ण, दुर्योधनादि यद्यपि गम्भीर भाव में थे, परन्तु चित्त में प्रसन्न अर्जुन के अग्नि में कूद जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अर्जुन शान्ति-पाठ पढ़ रहा था।

इस समय श्रीकृष्ण ने सुदर्शन-चक्र को शान्त कर लिया। धूलि बैठी तो सबने देखा कि अभी तो दो घड़ी दिन है। सूर्य क्षितिज से दो कला ऊपर है। अर्जुन ने भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा। कृष्ण ने अर्जुन को ललकारा—धनंजय! सावधान।

अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष अपने साथ जला देने के विचार से अपने समीप ही रखा हुआ था। उसने उसे उठाया और एक वाण चढ़ा लिया। जयद्रथ भयभीत भागा, परन्तु पूर्व इसके कि कोई भी कौरव जयद्रथ के बचाने के योग्य हो सके, अर्जुन का बाण गया और भागते हुए जयद्रथ का सिर कटकर आकाश में विचरने लगा।

इस पर तो पुनः युद्ध होने लगा, वापस जाती हुई सेनाएं लौट आयीं और पुनः घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। उस दिन आधी रात तक युद्ध चलता रहा।

अगले दिन रणभूमि में ही दुर्योधन आचार्यजी से उपालम्भ के रूप में कह रहा था, "गुरुजी! आज युद्ध आरम्भ हुए चौदहवां दिन है। मेरी ग्यारह अक्षौहणी सेना में से सात के लगभग समाप्त हो चुकी है। दो अक्षौहिणी तो अकेले अर्जुन और उसके पुत्र अभिमन्यु ने समाप्त कर दी है। केवल अभिमन्यु-जैसे बालक ने मेरे बीस से ऊपर महारथियों और अतिरथियों का वध कर डाला है। पांडवों की ओर से अभी केवल एक महारथी विराट्-पुत्र श्वेत मारा गया है और एक भीम तथा हिडम्बा राक्षसी का पुत्र घटोत्कच मरा है। आपने वचन दिया था कि युधिष्ठिर को बन्दी बना लाएंगे, परन्तु कुछ नहीं हुआ।

"मैं विस्मय करता हूँ कि आपके सब दिव्यास्त्र किस दिन काम में आएंगे? आपका ब्रह्मास्त्र किस दिन के लिए रखा हुआ है?"

द्रोण मुस्कराकर बोला, "आज सब ठीक होगा। या तो सूर्यास्त से पूर्व युधिष्ठर तुम्हारे शिविर में बन्दी होगा अन्यथा यह पूर्ण पांडव सेना विनाश को प्राप्त हो चुकी होगी।"

दुर्योधन ने हर्ष में अपना शंख बजाया। युद्ध आरम्भ हो गया। कृष्ण और अर्जुन रणभूमि में एक ओर खड़े देख रहे थे कि वे किस ओर जाएं। एकाएक कृष्ण के मन में एक विचार आया कि आज यदि द्रोणाचार्य समाप्त नहीं हुआ तो युद्ध में जीतना कठिन हो जायेगा।

कृष्ण ने अपना रथ रोका और पैदल धृष्टद्युम्न के रथ के समीप जाकर बोले, "अश्वत्थामा को युद्ध के किनारे पर ले जाने का प्रबन्ध कर दो।"

"क्यों?" धृष्टद्युम्न ने पूछा।

"तुम्हारे हाथ से एक सत्कार्य कराना है।"

ऐसा ही हुआ। अश्वत्थामा कृष्ण की चाल में आ गया। इस समय तक सूर्य सिर पर आ गया था। द्रोणाचार्य आज दिव्यास्त्रों से युद्ध करने लगा था और उनके कारण पांडव-सेना ऐसे मर रही थी जैसे दीपक पर पतंगे आ-आकर स्वाहा होते रहते हैं।

कृष्ण यह देख रहा था। उसको कुछ ऐसा समझ आ रहा था कि द्रोण आज सायं से पूर्व युद्ध को कौरवों के पक्ष में समाप्त कर देगा। यदि कुछ शेष रह गया तो वह ब्रह्मास्त्र चला देगा। इस समय उसने भीम को बुलाकर समझाया, "हम द्रोण को यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संहार करते देख रोकने जा रहे हैं। तुम भागते हुए हमारे पास आना और बहुत ऊंचे स्वर में घोषित करना कि अश्वत्थामा मार डाला गया है।"

"केशव! झूठ बोलना होगा?"

"हाँ।"

"तो एक बात करता हूं। हमारी सेना में एक हाथी है जिसका नाम अश्वत्थामा है। उसको मारकर मैं घोषणा कर देता हूं। झूठ भी नहीं होगा और हमारा कार्य भी हो जायेगा।"

"शीघ्र करो। अश्वत्थामा इस समय दूर है। वह किसी समय भी समीप आ सकता है।"

भीम शिविर में गया। अपनी गदा के एक प्रहार से अश्वत्थामा हाथी को मार वह रणभूमि में चला आया। इस समय तक अर्जुन, युधिष्ठिर, धृष्टद्युम्न, सत्यकि और विराट के पुत्रों ने मिलकर द्रोण पर आक्रमण कर दिया था। द्रोणाचार्य अपने दिव्यास्त्रों से सेना का संहार करता-करता रुक गया। अब वह इन महारथियों पर अपने दिव्यास्त्रों से प्रहार करने वाला था। इस समय अर्जुन ने घोर गर्जना करते हुए कह दिया, "गुरुवर! एक ब्राह्मण को इन दिव्यास्त्रों से उनकी हत्या करने पर लज्जा आनी चाहिए, जिनके पास दिव्यास्त्र नहीं है।"

"तो तुम पर उनका प्रहार करता हूं।" द्रोणाचार्य ने अपना शस्त्र अर्जुन पर चलाना आरम्भ कर दिया। अर्जुन उसको मार्ग में ही काटने लगा।

इस समय भीम अपने रथ पर सवार होकर आया और बीच में खड़ा हो बहुत ऊंचे और विजय स्वर में घोषणा करने लगा—"अश्वत्थामा मारा गया! अश्वत्थामा मारा गया!!"

यह घोष द्रोणाचार्य ने भी सुना। वह भीम के कूद-कूदकर कहने पर समझ रहा था कि उसका पुत्र मारा गया है। इस पर भी उसको भीम के कथन पर विश्वास नहीं आया। द्रोणाचार्य बाण चलाता रहा, परन्तु इस संकट की अवस्था में उसके हाथों में शैथिल्य आने लगा था। एकाएक उसके मन में विचार आया युधिष्ठिर से, जो कभी झूठ नहीं बोलता, पता करना चाहिए। उसने अपना रथ युधिष्ठिर के समीप लाने के लिए सारथी को कहा। कृष्ण भीम की घोषणा के पश्चात् द्रोणाचार्य के मन पर उसकी प्रतिक्रिया देख रहा था। द्रोणाचार्य के रथ को युधिष्ठिर के रथ की ओर जाते देख कृष्ण समझ गया कि द्रोणाचार्य का इसमें क्या उद्देश्य है। अतः अर्जुन का रथ भी उस ओर ही घुमा दिया। साथ ही अर्जुन को कहा, "जब मैं शंख बजाऊं तो तुम भी तुरन्त मेरे साथ शंख बजा देना।

कृष्ण ने अन्य योद्धाओं को भी अपने-अपने रथ समीप लाने का संकेत कर दिया। रथों की गड़गड़ाहट होने लगी। रथियों ने समझा कि द्रोणाचार्य घायल हो गए हैं और युधिष्ठिर की शरण में जा रहे हैं। इससे सबने विजय के शंख बजाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल लिए।

द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर के रथ के समीप पहुंचकर पूछ लिया, ''युधिष्ठिर! भीम सत्य कहता है क्या?''

युधिष्ठिर को भीम ने बता दिया था कि वह अश्वत्थामा नाम का हाथी मारा गया है। अतः उसने उच्च स्वर से कह दिया—'अश्वत्थामा हतः'। साथ ही असत्य न बोलने के विचार से कह दिया—अश्वत्थामा हाथी...

ज्यों ही 'अश्वत्थामा हतः' शब्द कहे गए, कृष्णादि सबने शंखध्वनि कर दी। साथ ही रथों की गड़गड़ाहट तथा शंखों की ध्वनि में द्रोणाचार्य ने पीछे हाथी का शब्द नहीं सुना।

द्रोणाचार्य का रथ दूर निकल गया। कृष्ण ने तथा धृष्टद्युम्न ने अपने-अपने रथ उसके साथ-साथ चला दिए। धृष्टद्युम्न घोर आक्रमण कर रहा था। इस समय कृष्ण ने द्रोणाचार्य से कह दिया—

''हे द्रोण! अब तक तुमने अधर्म का युद्ध किया है। अब तुम्हारी मृत्यु का समय आ गया है। इस समय तो यह क्रूरतापूर्ण कर्म न करो। तुम वेद-वेदांत के जानने वाले होकर और सत्य तथा न्याय-परायण ब्राह्मण होते हुए यह अशोभनीय क्रूर कर्म करते रहे हो। तुमने निःशस्त्रों को ब्रह्मास्त्र से दग्ध किया है। यह तो कदापि श्रेष्ठ कर्म नहीं हो सकता।

''इसलिए हे अमोध अस्त्रों के स्वामी! अपने शस्त्रास्त्र अब छोड़ दो। आज इस मनुष्य लोक में तुम्हारे रहने का समय अब पूर्ण हो गया है।''

द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न पर दिव्यास्त्र चला रहा था। परन्तु पुत्र के मारे जाने के समाचार से और कृष्ण के इस कथन से वह दिव्यास्त्र चलाने का ढंग भूल गया और उसके हाथ-पांव तथा बुद्धि शिथिल पड़ गई।

यह अवसर देख धृष्टद्युम्न ने खडग् निकाली और लपककर आचार्य के रथ पर चढ़कर उसका सिर काट डाला।

युद्ध बन्द हो गया। सेनायें शिविरों को लौट गईं। अश्वत्थामा तक उसके पिता की हत्या का समाचार नहीं पहुंचा और वह तीसरे प्रहर तक युद्ध करता रहा। उसको तो मुख्य रण-क्षेत्र में लौटने पर ही यह समाचार मिला।

द्रोण और अश्वत्थामा के प्रयत्नों से पांडव-सेना पांच अक्षौहिणी से कम होकर दो अक्षौहिणों के लगभग रह गई थी। अब कर्ण ने इसका पतन आरम्भ किया तो पांडव-सेना और कम हो गई। परन्तु इसका परिणाम हुआ कि पांडव रथी और महारथियों को भी कौरव-सेना के संहार करने का अवसर मिल गया।

परिणाम यह हुआ कि इस दिन के अन्त में जहां दुर्योधन तथा दुःशासन के अतिरिक्त प्रायः सब भाई मारे गये, वहां अश्वत्थामा ने पांचाल सेना का अतुल संहार कर द्रुपद और विराट राज को मार डाला। साथ ही पांडवों की सेना डेढ़ अक्षौहिणी रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई और कौरव-सेना केवल एक अक्षौहिणी के लगभग बची थी।

अगले दिन कर्ण और अर्जुन का सामना हो गया। एक-दो बार सेनाओं को युद्ध में लगाने के लिए अर्जुन और कर्ण ने रण-क्षेत्र के चक्कर लगाए और फिर मध्याह्न से पूर्व ही एक-दूसरे के सामने आ खड़े हुए। युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों रथ एक-दूसरे के चारों ओर चक्कर काट रहे थे और एक-दूसरे पर बाण-वर्षा कर रहे थे। यह दिव्यास्त्रों का युद्ध नहीं था। अर्जुन कर्ण पर दिव्यास्त्रों से प्रहार करना नहीं चाहता था।

इस पर भी अनेकों प्रकार के बाण छोड़े जाने लगे थे। कृष्ण की यह नीति थी कि कर्ण को युद्ध में धकेलते-धकेलते नदी के तट पर ले जाया जाय और उसके रथ की गति को अवरुद्ध कर दिया जाए। इस प्रकार बार-बार कर्ण के रथ के चक्कर काटते हुए उसको भी चक्कर काटने पर विवश किया जाए।

दिन का दूसरा प्रहर समाप्त होने वाला था कि कर्ण ने अर्जुन पर सर्प-बाण छोड़ा। इस बाण को मार्ग में काटना कठिन होता है। यह साँप की भांति मार्ग बदलते हुए चलता है। अर्जुन ने यत्न भी किया, परन्तु वह काट नहीं सका। कृष्ण ने देखा तो रथ को नरम भूमि पर ले जाकर भूमि में धंस जाने दिया। बाण हृदय स्थल को चीरने के स्थान मुकुट पर लगा और स्वर्ण मुकुट टूक टूक होकर दूर जा गिरा।

रथ के आधे-आधे चक्के भूमि में धंस गए थे। रथ चल नहीं सकता था। अश्व भी रथ के भूमि में धंस जाने के कारण घुटनों के बल हो गए थे।

अर्जुन उतरकर रथ को ऊपर उठाना चाहता था, परन्तु कृष्ण ने कहा, ''नहीं अर्जुन! युद्ध करते जाओ, अन्यथा कर्ण छोड़ेगा नहीं।'' कर्ण ने भी बाणों की वर्षा तीव्रकर दी। कृष्ण स्वयं उतरकर रथ को उठाने लगा। इस समय कर्ण ने दो बाण कृष्ण पर चलाए। अर्जुन ने उन बाणों को काट गिराया और इस समय सुरक्षा का युद्ध करता रहा।

जब कृष्ण रथ को उठा रहा था, कर्ण के सारथि शल्य ने कर्ण को धिक्कारना आरम्भ कर दिया। उसका कथन था कि वह अधर्म का युद्ध लड़ रहा है। एक तो वह सारथी पर प्रहार कर रहा था। दूसरे, वह युद्ध कर रहा है, जब प्रतिपक्षी का रथ हिल डुल नहीं सकता था।

कर्ण ने कहा, ''मद्रराज! आप अपना काम करिये। गुरु की हत्या करने वालों के साथ यही धर्म का व्यवहार है।''

शल्य चुप रहा, परन्तु उसने भी मन में एक निर्णय कर लिया। कृष्ण ने अपने अपूर्व बल का परिचय देकर रथ को दोनों भुजाओं पर उठाकर दलदल से एक ओर कर दिया। देखने वालों ने प्रसन्नता के शंख बजाए। इस समय कर्ण प्रहार करता रहा। कृष्ण को भी घाव लगे, परन्तु रथ पुनः चलने लगा।

अब पुनः युद्ध होने लगा। शल्य को कर्ण के इस अधर्म के युद्ध पर भारी क्रोध था। उसने भी रथ को चक्कर देते देते नदी के तट पर दल दल में फंसा दिया। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कर्ण ने कहा, "महाराज! यह क्या कर दिया है?"

"रथ दलदल में धंस गया है।"

"तो इसको शीघ्र निकालिये।"

"मुझ जैसे वृद्ध व्यक्ति से तो यह निकल नहीं सकेगा।"

इस समय कृष्ण अर्जुन को कह रहा था, "कुन्तीनन्दन! इस अवसर को मत जाने दो। शीघ्रता करो।"

कर्ण ने हाथ खड़ाकर अर्जुन को युद्ध बन्द करने के लिए कहा। अर्जुन ने प्रश्नभरी दृष्टि में कृष्ण की ओर देखा। कृष्ण ने कहा, "मत चुको। यह है अवसर कर्ण के वध का।" वह रथ के चक्के को पकड़कर उठाने लगा था कि अर्जुन ने अपना वालिक नामक अति भयंकर बाण कर्ण के सिर का भेदन करने के लिए छोड़ दिया बाण ने कर्ण का शिरच्छेदन कर दिया और पांडवा सेना के हर्ष नाद के साथ कर्ण का देहावसान हो गया।

इस घोर हर्ष नाद की ध्वनि सुनकर कौरव सेना ने युद्ध बन्द कर दिया। दुर्योधन शोकग्रस्त शिविर को लौट गया। शल्य भी लौट कर अपने शिविर में पहुंच गया।

: 17 :

अगले दिन मेरे मन में विश्वास था कि वह युद्ध का अन्तिम दिन होगा। मुझे रण क्षेत्र में जाकर यह पता चला कि शल्य ने कौरव सेना का सेनापति बनना स्वीकार कर लिया है। इस बात पर मुझको ही विस्मय नहीं हुआ, प्रत्युत पांडव सेना में भी सबको विस्मय हुआ। शल्य पांडवों का मामा था। दुर्योधन की चाल में आकर वह उसके पक्ष में युद्ध करने चला आया था, अन्यथा उसकी सहानुभूति पांडवों के साथ थी। मामा को भानजों के विपरीत लड़ने के लिये उद्यत देख, सब आश्चर्य करते थे।

मद्रराज सेनापति के चिह्नों से विभूषित अपने शिविर में सैनिकों को समझा रहे थे। वे अनुभव कर रहे थे कि वे संख्या में कम रह गए हैं। अतः अब उनको युद्ध फैलकर नहीं, परन्तु एक स्थान पर एकत्रित होकर और एक दूसरे की रक्षा करते हुए करना चाहिए। इसी के अनुरूप वे सेना को समझा रहे थे।

डेढ़ प्रहर भर घमासान युद्ध हुआ और कौरव-सेना का पूर्ण विनाश हो गया। युधिष्ठिर ने एक अचूक शक्ति के प्रयोग से शल्य को स्वर्ग भेज दिया।

कौरव सेना ऐसे ढंग पर खड़ी थी कि वह पांडव-सेना से पूर्ण रूप में घिरी हई थी और कोई भी सैनिक भागकर नहीं जा सका। प्रमुख व्यक्ति तो सब के सब मारे गए।

एक बात और हुई। जब शकुनि मारा गया तो दुर्योधन अपने जीवन की आशा छोड़ अपना कवच इत्यादि उतार, मुकुट को रण-भूमि में ही फेंक एक ओर चल दिया। उस दिन युद्ध दोपहर को ही समाप्त हो गया था। इस पर पांडव दुर्योधन का शव ढूंढने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे, परन्तु वह कहीं मिला नहीं। वे तो ढूंढना छोड़ भी देते, परन्तु कृष्ण ने कह दिया कि जैसे भी हो उसको ढूंढा जाए। उसका कहना था कि यदि वह जीवित बच गया तो पुनः षड्यन्त्र कर भोले-भाले पांडवों को परेशान करेगा।

अतः दुर्योधन की खोज तीव्र कर दी गई।

सांय होने पर कुछ व्याध पांडव शिविर में मांस बेचने आये। उन्होंने भीम को कुछ बताया, जिससे यह अनुमान लगाया गया कि दुर्योधन सरोवर में छिपा हुआ है। इस सरोवर में कई गुप्त गृह थे और दुर्योधन वहीं था।

अतः तुरन्त पांचों पांडव, श्रीकृष्ण तथा अन्य रथी सरोवर तट पर जा पहुंचे।

दुर्योधन को गर्भ-गृह से बाहर लाने में युधिष्ठिरादि सफल हो गए। दुर्योधन ने युद्ध टालने के लिए कह दिया—''युधिष्ठिर! मैं बहुत थक गया हूं। इस कारण विश्राम करने यहां चला आया हूं।''

युधिष्ठिर ने कहा, ''परन्तु थके हुए तो हम भी हैं। हमने तुमसे कम परिश्रम नहीं किया, न ही हमने अपने को कभी युद्ध से बचाकर रखा है। इस कारण अब हम तुमसे युद्ध करने आए हैं।''

इस पर दुर्योधन ने दूसरी बात कही। उसने कहा—

''भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! मैं आज भी पाँचालों और पांडवों का उत्साह भंग कर उनको युद्ध में पराजित करने का सामर्थ्य रखता हूं।

''परन्तु मैं विचार करता हूं कि जब भीष्म पितामह, द्रोण तथा कर्ण मारे गए हैं तो अब युद्ध की आवश्यकता नहीं रही। अब यह सूनी पृथिवी तुम्हारी ही रहे। कौन राजा सहायकों से रहित होकर राज्यशासन की इच्छा करेगा?''

युधिष्ठिर इस अभिमानयुक्त वचन को सुनकर स्तब्ध रह गया उसने कुछ विचारकर मन में दृढ़ संकल्प किया कि इस पापात्मा का नाश करना ही चाहिए। वह कहने लगा, ''दुर्योधन! जब तुममें देने का सामर्थ्य था तब तो तुमने दिया नहीं। अब जब तुम कुछ नहीं दे सकते, इसको देने लगे हो। वह अब तुम्हारा है ही कहाँ?

''अब इतनी उदारता कैसे आ गई? क्या रहस्य है इसमें? पहले तो सुई की नोक बराबर भी भूमि छोड़ने को तैयार नहीं थे। मैं समझता हूं कि तुम विवेक खो बैठे हो। स्मरण रखो, आज हम भूमि मांगने नहीं आये। वह तो हमने शौर्य से प्राप्त कर ली है। अब हम तुम से युद्ध कर तुम्हारा जीवन लेने आये हैं। तुम जैसे पापात्मा के भार से इस पृथिवी को मुक्त करेंगे। तुम्हारे ऐसी उदारता दिखाने पर भी इस युद्ध से बच नहीं सकोगे।

''आओ गदा पकड़ो और एक एक युद्ध कर लो। जिससे चाहो युद्ध करो। सब क्षत्रियों के रक्त का ऋण मेरे सिर पर है और उनके इस ऋण से मुक्त होने का एकमात्र उपाय तुम, जो इस सब में कारण हो, को यमलोक पहुंचाना ही है।

''आओ, मैं तुमको वर देता हूं कि तुम यदि हम में से एक को भी मार सकोगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो पूर्ण-राज्य तुमको दे देगे।"

युधिष्ठिर के इस वाक्य को सुन कृष्ण क्रोध से लाल-पीला होता हुआ धर्मपुत्र को कहने लगा, "यह क्या कह दिया है राजन्! मैं तुमको कह देता हूं कि हम तुम्हारे इस वचन का पालन नहीं करेंगे। कब तक तुम अपने भाईयों को दान दक्षिणा में देते रहोगे?"

यह चेतावनी देकर कृष्ण ने भीम के कान में कह दिया, "भीम! दुर्योधन का युद्ध तुमसे ही होगा। देखो, दुर्योधन बचे नहीं। स्मरण करो, उस द्यूत-सभा में जब दुर्योधन ने द्रौपदी को अपनी जाँघ पर बैठने का आदेश दिया था, तब तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी?

"इस दुष्ट को अन्न गन्दा करने के लिए छोड़ना नहीं।"

भीम द्रौपदी के अपमान की बात सुन उत्तेजित हो लंगोटा कसने लगा। अभी ये लोग तैयारी कर ही रहे थे कि बलराम तीर्थयात्रा करते हुए वहां आ पहुंचे। भीम और दुर्योधन दोनों गदा युद्ध में बलरामजी के शिष्य थे। अतः वे दोनों का युद्ध देखने खड़े हो गये।

युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों शूरवीर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे और पैंतरा बदलते हुए प्रहारों से बचने का यत्न करने लगे। दिन ढलता जाता था और दोनों वीर एक दूसरे पर प्रहार से बचने के लिये और दूसरे पर चोट पहुंचाने के लिये भाग दौड़ कर रहे थे।

दो घड़ी भर के युद्ध के पश्चात् भी दोनों में उत्साह और सतर्कता वैसी ही थी, जैसी आरम्भ में थी।

एक बहुत बड़ा जमाव हो गया था। सहस्रों लोग देखने के लिये एकत्रित हो गये थे। सब सांस रोके हुए इस भयंकर युद्ध को देख रहे थे। दोनों के शरीर लहू से लथपथ हो रहे थे। दोनों की गदाएं परस्पर टकरा टकराकर चिन्गारियां छोड़ रही थीं। इस पर भी दोनों योद्धा निरन्तर लड़ते ही जाते थे।

एक बार भीम ने अपनी गदा ही दुर्योधन पर दे मारी। परन्तु दुर्योधन ने पैंतरा बदलकर इस वार को व्यर्थ कर दिया। भीम गदा रहित हो गया। इस अवसर से लाभ उठा दुर्योधन ने भीम की छाती पर अपने पूरे बल से प्रहार किया। भीमसेन मूर्छित हो गया।

यह मूर्छा एक क्षण तक ही रही। भीमसेन ने दौड़कर अपनी गदा उठाई और दुर्योधन के सिर पर वार किया। दुर्योधन चकराकर भूमि पर जा गिरा।

परन्तु वह शीघ्र ही उठा और पुनः मर्यादित युद्ध होने लगा।

इस समय कृष्ण ने भीम के पास जा कान में कहा, "कुन्तीनन्दन! द्रौपदी को दी गयी प्रतिज्ञा स्मरण करो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीम को स्मरण आ गया। उसने साहस बांध गदा उठाई और पैंतरा बदला। जब दुर्योधन उछलकर वार करने लगा, उसकी जंघा पर अपने पूरे बल से वार कर दिया। दुर्योधन इसकी आशा नहीं करता था। न ही इस स्थान पर वार किये जाने का नियम था। इस चोट से दुर्योधन भूमि पर लोट पोट होने लगा। जंघा की हड्डी चूर-चूर हो जाने से वह पुनः उठ नहीं सका और प्राण छोड़ने के लिए लेट गया।

भीम दुर्योधन को सम्बोधन कर कहने लगा, "क्यों रे पापी! आ गया आनन्द द्रौपदी को जंघा पर बैठने के लिए कहने का? दुष्ट पापी! भरी सभा में एक कुलीन स्त्री को नग्न करने का यत्न का आनन्द अब ले लो।"

इतना कहते कहते आवेश में भीम ने दाहिने पाँव से दुर्योधन के मुकुट पर ठोकर मार दी।

दुर्योधन इस समय तक सचेत हो गया था। जब जाँघो की हड्डियाँ चूर चूर हो जाने के कारण उठ नहीं सकता था। अतः बाँहों के बल से वह उठकर पुट्ठों के बल पर बैठ, कृष्ण को सम्बोधन कर कहने लगा, "ओ! कंस के दास के बेटे! तुम्हारे छल कपट के कारण ही कौरवों की पराजय हुई है। तुम्हारे स्मरण कराने पर ही भीम ने मेरी जाँघों पर अधर्मपूर्वक गदा का प्रहार किया है।

"यह घोर पापाचार कराया तुमने, जो योगी, धर्मात्मा और धर्म उपदेशक बने फिरते हो।

"यदि तुम युद्ध में हस्तक्षेप नहीं करते तो निश्चय ही विजय हमारी होती। तुमने कुटिल मार्ग से, अपने संघर्ष में लगे हुए हम लोगों का अधर्म से वध करवाया है। वास्तव में तुम महान् पापी हो।"

देवकीनन्दन हंसने लगा। हंसकर बोला, "गांधारीनन्दन! तुमने पाप का मार्ग पकड़ रखा था। उस पाप-मार्ग पर चलते हुए तुम दूसरे निरपराध लोगों को असह्य यंत्रणा पहुंचा रहे थे। तुमको ऐसा करने की स्वीकृति देनी तो पाप की सहायता करनी हो जाती।

"यह ठीक है कि तुम बलवान् थे। शक्ति सम्पन्न थे। तुम्हारे सहायक भी बलवान् थे, परन्तु बलवान् होना मात्र ही तो धर्म का पक्ष नहीं। बल को धर्म-कार्यों में प्रयुक्त करना ही धर्म है।

"जब बलशाली अधर्माचरण पर तुल जाये, तब उसके बल को तोड़ना ही धर्म है। उसके लिए युद्ध-नियमों का भंग भी अधर्म की परिधि में नहीं आ सकता। यह धर्मकार्य ही हुआ है। वीर पांडवों ने किसी प्रकार भी अधर्माचरण नहीं किया।

"वास्तव में जिनको तुम हमारे अनुचित कार्य कह रहे हो, वे तुम्हारे पापों का प्रतिकार रूप ही थे। जिनको कराने का तुम मुझ पर लांछन लगा रहे हो, वे वास्तव में तुम्हारी प्रेरणा का फल है। तुम्हारे पापकर्म ही उन प्रतिक्रियाओं का आह्वान कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अब तुम्हारा अन्त समय आ रहा है। अब तो परमात्मा का चिन्तन करो। यह जन्म तो गया, अब परलोक की चिन्ता कर लो।"

: 18 :

मैं दुर्योधन के निधन के पश्चात् कुरुक्षेत्र से चल हस्तिनापुर में पहुंच गया। वहां उस दिन का समाचार दिया तो प्रासाद और नगर में भारी शोक फैल गया। दुर्योधन की मृत्यु से तो कौरव पक्ष के पूर्ण नाटक पर पटाक्षेप पड़ गया। अगले दिन मैं पांडवों का समाचार लेने के लिए कुरुक्षेत्र में गया। मैं जानना चाहता था कि वे अब अपनी राजधानी हस्तिनापुर बनायेंगे अथवा इन्द्रप्रस्थ। साथ ही वे नगरी में कब प्रवेश करेंगे? कब से वे राज्य कार्य आरम्भ करेंगे?

परन्तु कुरुक्षेत्र में जाकर तो वहां पांडव-शिविर को पूर्ण-रूपेण विध्वंस हुआ देख चकित रह गया। पिछली रात युद्ध के पश्चात् अवशिष्ट सेना की गणना की गई थी। कौरवों की सेना में तो कोई भी नहीं बचा था। पांडवों की सेना में लगभग दस हजार पैदल सैनिक बचे थे, पांच हजार अश्व और दो हजार रथ बचे थे। परन्तु इस समय तो वहां मृतकों के ढेर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। यह क्या हुआ, कैसे हुआ, यह जानने के लिये मैंने अपना विमान एक ओर उतरवाया। मुझे विमान से बाहर निकलते देख पेड़ पर से एक व्यक्ति काँपता हुआ नीचे उतरा और हाथ जोड़ खड़ा हो गया। वह मुझे पहिचानता था। उसने मुझे प्रणाम किया तो मैंने पूछा, "यह क्या हुआ है?"

उसने कहा, "श्रीमान्! आधी रात्रि के बाद गुरु पुत्र अश्वत्थामा और कृतवर्मा आये और युद्ध के बाद थककर सोये हुए सैनिकों पर अपने दिव्यास्त्रों से प्रहार करने लगे। मैं भाग्यवश शौच के लिए दूर जंगल को गया हुआ था। जब मैं लौटा तो यहाँ विनाश लीला हो रही थी। मैं दूर ही एक पेड़ पर चढ़कर बैठ गया। दिव्यास्त्रों के कारण शिविर जलकर भस्म हो गया तथा एक भी सैनिक जीवित नहीं बचा।"

मैंने चिन्तित मन पूछा, "श्री कृष्ण और पाण्डव?

"पांचों भाई और श्रीकृष्ण दुर्गा पूजन के लिये कल सायंकाल ही चले गये थे और अभी तक लौटे नहीं।"

इसी समय दूर से रथों के आने की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी और कुछ ही क्षणों में पांचों भाई और श्रीकृष्ण वहां पहुंच गये। वे भी इस विनाश को देख स्तब्ध खड़े रह गये। उसी व्यक्ति ने, जिसने मुझे वहां का वृत्तान्त बताया था, अब उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया। यह वृत्तान्त सुन सभी भाई शिथिलेन्द्रिय हो वहीं बैठ गये। इन विनाश के बाद तो उनका कुछ भी नहीं बचा था। यहां तक कि पांडवों की सन्तान में से भी कोई नहीं बचा था।

इस संहार की सूचना उपलव्यपुर भेजी गई और पांडव कुल की स्त्रियाँ भी वहां आ गईं। द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा उनमें प्रमुख थीं। अपनी सन्तान की समाप्ति देख वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलाप करने लगीं। द्रौपदी का विलाप भारी दुःखपूर्ण था। उसने तेरह वर्ष वन में व्यतीत किये थे, फिर दासी का कार्य किया; यह सब इसी कारण कि इसके बाद सुख पूर्ण जीवन व्यतीत करेगी ओर अब अपनी सन्तान की समाप्ति देख उसका धैर्य ही टूट गया था।

उसका विलाप देख अर्जुन ने उसे कहा, ''आर्ये! मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि सूर्यास्त से पूर्व उस नराधम का, जिसने यह पाप कर्म किया है, शिरच्छेद कर तुम्हारे सामने लाकर रख दूंगा।''

इतना कह वह भागकर अपने रथ में बैठ गया। इस समय कृष्ण भी उसके साथ ही रथ पर बैठ गये और वे दोनों उस दिशा में चले गये, जिस ओर दिव्यास्त्र चलाकर अश्वत्थामा इत्यादि भागे थे।

उनको बहुत दूर नहीं जाना पड़ा। थोड़े ही दूरी पर तीनों, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा एक पेड़ के नीचे विश्राम करते हुए मिल गये। अर्जुन ने अश्वत्थामा को युद्ध के लिये ललकारा। कृपाचार्य तथा कृतवर्मा तो अर्जुन का रौद्र रूप देख भाग खड़े हुए। अश्वत्थामा भी भाग जाता परन्तु अर्जुन ने उसका मार्ग रोका हुआ था। अर्जुन ने कहा, ''अरे नराधम! तू ब्राह्मण के घर मलेच्छ कैसे उत्पन्न हो गया? सोये हुए सैनिकों तथा युद्ध से तटस्थ लोगों की हत्या कर तूने ऐसा घोर पाप कर्म किया है कि तुझे जन्म-जन्मान्तर पाप योनि में पड़ा रहना पड़ेगा। सावधान हो जा। युद्ध के लिये आगे बढ़ नहीं तो मैं तेरी ऐसे ही हत्या कर दूंगा।''

अश्वत्थामा निःशस्त्र नहीं था। उसके पास ब्रह्मास्त्र था। उसने वही चला दिया। अर्जुन के पास भी ब्रह्मास्त्र था। उसने भी चला दिया। दोनों अस्त्र मार्ग में टकराये और भयंकर गर्जन के साथ नष्ट हो गये। इस पर अश्वत्थामा भागने लगा तो भीम ने, जो पीछे-पीछे वहाँ आ गया था, भागकर उसे पकड़ लिया। भीम ने उसका सिर काटने के लिये खड्ग निकाला परन्तु कृष्ण ने उसे रोक दिया। अर्जुन ने कहा, ''मैंने इसका सिर द्रौपदी के चरणों में गिराने की प्रतिज्ञा ली है।''

कृष्ण ने कहा, ''इसका मस्तक फोड़कर इसकी मणि निकाल लो। तुमने शिरच्छेद की प्रतिज्ञा की थी, वही शिरच्छेद का काम करेगी। यह मणि निकल जाने से यह ब्राह्मण जीते जी मृत्यु से भी अधिक दुःख पायेगा।''

ऐसा ही किया गया और सब लोग लौट गये।

: 19 :

मैंने हस्तिनापुर लौटकर धृतराष्ट्र को इस अन्तिम दिन का वृत्तान्त भी बताया। इस दिन के भयंकर परिणामों को देखकर तो धृतराष्ट्र भी अपने पाप-कर्मों का फल देख काँप उठा। उसने अपने जीवन के पूर्ण पाप-कर्मों को स्मरण कर विलाप और पश्चात्ताप करना आरम्भ कर दिया अन्त में उसने कहा, ''यह सब मेरे ही पाप-कर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। मेरी अपने पुत्र के प्रति आसक्ति थी, जिसका यह परिणाम हुआ है।''

युधिष्ठिर अपने भाईयों, श्रीकृष्ण और द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर आ गये। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे हस्तिनापुर में ही रहेंगे।

युधिष्ठिर आते ही सबसे पहले अपने भाईयों और कृष्ण के साथ महाराज धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित हुआ। युधिष्ठिर ने महाराज और महारानी गान्धारी के चरण-स्पर्श किये और कहा, ''महाराज! होनि बहुत प्रबल है। भवितव्यता के अधीन हम परस्पर लड़-मरे हैं। इस समय हमारा पूर्ण परिवार उस ठूठ पेड़ के समान हो गया है, जिसकी शाखाएं, पत्ते और फल झड़ गये हों। हमें भारी खेद है कि ऐसा करने में हमने भी सहयोग दिया है।

''महाराज! मैं तो सदा ही आपकी आज्ञा में रहते हुए सन्तोष और प्रसन्नता अनुभव करता था। मैं आपको आश्वासन दिलाने आया हूं कि मैं अब भी वैसे ही आपकी आज्ञा के अधीन रहूंगा। आप अब भी भारत-देश के सम्राट् और चन्द्रवंशियों के सरताज रहेंगे। भीम अब भी आपके नाम पर ही पूर्ण संसार को अपने चक्रवर्ती राज्य के अन्तर्गत रखेगा। आप अपनी कृपा का हाथ मुझ पर बनाये रखें। यही हमारी आपसे विनती है।''

धृतराष्ट्र इस पूर्ण कथन को वाग्जाल समझकर रोष से भर गया। एकाएक यह बोला, ''मेरी इच्छा युद्ध में जीतने वाले भीम को पुत्रवत् आलिंगन करने की है। कहां है वह?''

युधिष्ठिर कुछ कहने ही वाला था कि कृष्ण ने अधरों पर उँगली रख उसे चुप करा दिया और भीम को आगे बढ़ते देख उंगली के संकेत से रोक दिया। कृष्ण ने उस आगार के बाहर से युधिष्ठिर के एक अंग-रक्षक को बुला लिया और उसको आगे कर कहा, ''महाराज! भीम सेवा में उपस्थित है।''

कृष्ण ने अंगरक्षक को संकेत से महाराज के चरण-स्पर्श करने को कह दिया। अंगरक्षक इस नाटक का अर्थ न समझते हुए आगे बढ़ा और महाराज के चरण-स्पर्श करने के लिए झुका तो धृतराष्ट्र ने उठकर उसको गले लगा लिया। गले लगाते हुए इतना कसकर उसका आलिंगन किया कि अंगरक्षक की हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं और वह वहीं मरकर ढेर हो गया।

वह वहीं महाराज धृतराष्ट्र के पाँव में गिरा तो धृतराष्ट्र ने कह दिया, ''ओह! यह मैंने क्या कर दिया है? युधिष्ठिर! पुत्र! क्षमा करना। मुझे दुर्योधन का स्मरण हो आया था। मैं अपने क्रोध को वश में नहीं रख सका। कृष्ण! मेरे मन की अवस्था का विचारकर मुझको क्षमा करना।''

उत्तर कृष्ण ने ही दिया, ''महाराज! यह आपने क्या किया है? आप अपने सौ पुत्रों की हत्या कराकर अब अपने भाई के पुत्रों की एक-एक कर हत्या करने लगे हैं?''

इस पर धृतराष्ट्र रोने लगा और भीम के लिए विलाप करने लगा। मैं वहां खड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण के इस नाटक का अन्तिम दृष्य देख रहा था। कृष्ण ने मुझको चुप रहने का संकेत कर कह दिया, "संजयजी! महाराज को अन्तःपुर में ले जाइये। यहां इनको अपने इस कार्य का अत्यन्त दुःख होगा।"

मैंने महाराज धृतराष्ट्र की बाँह पकड़ आश्रय दे उठाया और गांधारी ने धृतराष्ट्र का हाथ पकड़ा। मैं उनको अन्तःपुर में ले गया। उनको बैठाया तो धृतराष्ट्र पूछने लगे, "संजयजी! युधिष्ठिर मुझको मेरे इस कृत्य के लिए क्षमा कर देगा क्या?"

मेरे मन में आया कि महाराज के शोक को शान्त करने के लिए इनको वास्तविक बात बता देनी चाहिए। इस प्रकार विचार कर मैंने कहा, "महाराज! भीम जीवित है। आपने तो युधिष्ठिर के अंगरक्षक अनग को कुचलकर मार डाला है।"

धृतराष्ट्र रोता-रोता एकदम चुप हो गया। फिर उसका मुख मलिन हो गया और अन्त में पुनः रोष में भर कर पूछने लगा, "और यह छल मेरे साथ किसने किया है?"

"महाराज! यह तो श्रीकृष्ण की सूझबूझ का परिणाम है।"

"बहुत धूर्त है वह!"

"महाराज! उसकी बुद्धि बहुत तीव्र है। वह अति द्रुतगति से विचार करता है और फिर अपने विचार किये परिणामों को उतनी ही गति से कार्य में ढालता है।"

धृतराष्ट्र अति खिन्न-मन अपने पलंग पर लेट गया! दुर्योधन! हा! दुर्योधन!!' करने लगा।

: 20 :

जब युधिष्ठिर के अंगरक्षक को भीम बना धृतराष्ट्र के सम्मुख खड़ा किया गया तो मैं मन में विचार कर रहा था कि कृष्ण अति दुष्ट व्यक्ति है जो इस दुःख की अवस्था में भी अंधे महाराज से हंसी कर रहा है। परन्तु जब मैंने धृतराष्ट्र को बताया कि भीम नहीं कोई अन्य व्यक्ति उसके स्थान पर मारा गया है तो धृतराष्ट्र को कृष्ण को गाली देते सुन मैं विचार करने लगा था कि मेरी भावना कितनी निरर्थक थी। तत्पश्चात् मैं युधिष्ठिरादि के आवास में मिलने गया तो देखा कि युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र के मन की दुःखित अवस्था से द्रवित हो, सजल-नेत्र बैठा है। मैंने युधिष्ठिर को बताया कि महाराज धृतराष्ट्र को यह जान कि भीम अभी जीवित है और भी अधिक दुःख हुआ; उनका भीम के मारे जाने पर दुःख का प्रदर्शन एक नाटक मात्र था। साथ ही महाराज धृतराष्ट्र को श्रीकृष्ण पर क्रोध आ रहा है कि उसने उनको अपना क्रोध निकालने का अवसर क्यों नहीं दिया।

युधिष्ठिर का शोक नहीं मिटा। वह कहने लगे, "श्रीकृष्ण भी यही कह रहे हैं, परन्तु मैं समझता हूं कि महाराज धृतराष्ट्र का यह कार्य उस दुःख की प्रतिक्रिया में था जो उनको हुआ है।"

"परन्तु महाराज! इसमें आपका क्या दोष है? युद्ध उन्होंने आरम्भ किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध का कारण भी उन्होंने ही प्रस्तुत किया था।''

''एक हाथ से ताली नहीं बजती, संजयजी!''

मैं समझ गया था कि युद्ध की भीषणता देख युधिष्ठिर का मस्तिष्क निष्क्रिय हो गया है। अतः मैंने कहा, ''महाराज! जो कुछ होना था, वह तो हो गया। अब बीती बात पर पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। मेरा कहा मानिये, अब राज्य-कार्य को सम्भालिये और प्रजा के दुःख एवं क्लेशों का निवारण करिये।''

मैं कृष्ण से मिलने गया। उनका विचार कुछ दिन हस्तिनापुर में रहने का था, जिससे वे पांडवों को राज्य-कार्य में संलग्न कर सकें। परन्तु युधिष्ठिर की समझ में कुछ नहीं आता था। वह अभी भी समझ रहा है कि वह घोर पातकी है, जिसने अपने परिवार वालों का संहार किया है। कृष्ण ने मुझसे कहा—

''मैं तो चाहता था कि अर्जुन का राज्याभिषेक कर दूं। युधिष्ठिर तो मान जायेगा, परन्तु अर्जुन नहीं मान रहा। भीम भी मेरी इस योजना को पसन्द नहीं करता। उसका कहना भी ठीक है कि अर्जुन और भीम महान् योद्धा तो हैं, परन्तु उनमें राज्य करने की धर्म-बुद्धि नहीं है।

''अभी-अभी मैं युधिष्ठिर के पास से आ रहा हूं और उससे सर्वथा निराश हो समझ नहीं पा रहा कि क्या करूं। कभी विचार करता हूं कि मैं वापस द्वारिका को लौट जाऊँ।''

मैंने कहा, ''यदि आप पांडवों को छोड़कर चले गये तो युधिष्ठिर और भारत के चक्रवर्ती राज्य का क्या होगा?''

''मैं तो निराश यहां से जाने का विचार कर रहा हूं।''

''महाराज! एक मेरी भी योजना है। परन्तु उसको कार्य-रूप में आप ही ला सकेंगे।''

''बताइये।''

''यह चन्द्रवंशियों की दुर्बलता है कि इनके मन में अपने परिवार के वृद्धजनों के लिए बहुत मान और प्रतिष्ठा है। ये उनके बुरे कर्मों की ओर ध्यान नहीं देते। उनसे अपने पारिवारिक सम्बन्ध को ही प्रतिष्ठा देते हैं। यही कारण है कि वे आपकी बात, जो उनके परिवार की हत्या करने में सहयोग देते रहे हैं, को मान्यता नहीं दे रहे।

''उनके मन की ऐसी स्थिति में मेरी सम्मति है कि इनको भीष्म जी के पास ले जाय जाये और उनसे उपदेश दिलवाया जाय। उनके कहने का इनके मन पर प्रभाव होगा, अन्य किसी के कहने से कुछ भी नहीं होगा।''

''परन्तु वे तो इतने दिन तक शर-शय्या पर लेटे रहने से और निराहार रहने के कारण शरीर और बुद्धि से अति दुर्बल हो गए हैं। वे क्या उपदेश देंगे और उसका प्रभाव क्या होगा?

''यदि आप चाहें तो अपने योगबल से उनसे मुख से अपने मन की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलवा सकते हैं। साथ ही मरण-पर्यन्त उनमें शक्ति का संचार कर सकते हैं।''

श्रीकृष्ण मेरी योजना सुन गम्भीर हो गये और कुछ विचारकर कहने लगे, ''संजयजी! एक बात आप करिये। युधिष्ठिर से मिलने जाइये और उनको कह दीजिये कि उनको भीष्मजी से मिलने जाना चाहिए। उनका स्वर्गारोहण अब समीप है और वैसे धर्मात्मा व्यक्ति के अन्तिम वचन सुनने चाहिएं।

''उनके मन में यदि भीष्मजी के लिए श्रद्धा हुई तो स्वाभाविक रूप में वे कुरुक्षेत्र की यात्रा करने के लिए तैयार हो जायेंगे। मैं इसका समर्थन कर दूंगा और उनके साथ चलूंगा और फिर देखूंगा कि क्या किया जा सकता है।''

यह कार्य मैंने स्वीकार कर लिया।

: 21 :

भीष्म पितामह बहुत दुर्बल हो गए थे। उनमें पहचानने की शक्ति भी कम हो गई थी। स्मृति भी बहुत सीमा तक विलुप्त हो चुकी थी। जब हम सब उनको चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए तो आंखें मूंदे हुए ही उन्होंने पूछा, ''कौन है?''

उत्तर कृष्ण ने दिया। उन्होंने कहा, ''पितामह! मैं कृष्ण वासुदेव हूं। ये मेरे साथ पांडव और संजयजी हैं।''

''क्या करने आये हो?''

''आपके दर्शन करने आये हैं?''

''क्या होगा दर्शनों से?''

इस समय तक कृष्ण ने अपनी योग-दृष्टि भीष्मजी पर केन्द्रित कर दी थी। उक्त प्रश्न करते-करते भीष्मजी ने आंखें खोल दीं। कृष्ण ने जो उनके पांव की ओर खड़ा था, कहा ''महाराज! युधिष्ठिर के सब कामों में आप आशीर्वाद देते रहे हैं। अब यह कुरु राज्य का कार्य आरम्भ करने वाला है और चाहता है कि इस कार्य में भी परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति से आशीर्वाद प्राप्त करे।''

''मेरा आशीर्वाद इसके साथ है। जाओ युधिष्ठिर! अपना अर्जित राज्य भोग करो।'' कृष्ण ने फिर कहा, ''भगवन्! यह समझ रहा है कि इसने यह राज्य पाप-कर्म से अर्जित किया है। महाराज, तनिक इसको बताइये कि क्या यह पाप से अर्जित है?''

मैं देख रहा था कि भीष्म एक यन्त्र की भांति बोल रहा है।

पहला वाक्य तो उसके मुख से ऐसे निकला था मानो वह अन्तिम श्वास ले रहा हो, परन्तु ज्यों-ज्यों कृष्ण पितामह पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करता जाता था, वह हाड़-चाम का पिंजर ऐसे बोलने लगा था मानो वह अभी यौवनावस्था में है। कृष्ण की यह याचना सुन, वह दृढ़ स्वर में कहने लगा, ''युधिष्ठिर! किसने तुमको बताया है कि तुमने इसके अर्जन में कोई पाप-कर्म किया है? तुमने उनको ही मारा है, जो मारने योग्य थे।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु पितामह!" अब युधिष्ठिर ने स्वयं वार्तालाप में भाग लेते हुए अपने मन का संशय वर्णन करने के लिए कहा, "हमने कौरवों को तथा आपको छल से मार डाला। हमने गुरुवर द्रोणाचार्य की हत्या भी छल से की थी। कर्ण को भी हमने अधर्मयुक्त अवस्था में मारा था। अन्त में राजा दुर्योधन की हत्या हमने युद्ध के नियम भंग कर की है।

पितामह! इतना पाप हुआ है कि मुझे अब राज्य-कार्य पाप की एक भारी गठरी प्रतीत हो रही है और मैं सिर पर भारी बोझा अनुभव कर रहा हूँ।

भीष्म ने वात्सल्यता-भरी दृष्टि से युधिष्ठिर की ओर देखा और कह दिया, "युधिष्ठिर, तुम अभी भी बालक ही बन रहे हो। भला युद्ध में तुमने मुझको मारा तो क्या यह दोष तुम्हारा है कि मैं तुम्हारे सामने धनुष-वाण लिये खड़ा था। मेरा तुम्हारे सम्मुख आकर खड़ा होना ही इस बात का प्रमाण है कि तुमने मुझको मारकर किसी प्रकार का भी पाप नहीं किया।

"देखो युधिष्ठिर! आदि काल में सब लोग धर्मपरायण थे, अपने अपने धर्म पर दृढ़ थे। सब एक-दूसरे की सहायता करते थे। इससे उस युग में सब एक-दूसरे की रक्षा करते थे। तब न काई राजा था और न ही राजदण्ड।

"परन्तु-बाद में दुष्ट लोगों ने अपना-पराया, तेरा-मेरा, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, कर्म-अकर्म में भेद छोड़ दिया। तब लोगों ने दुष्टों से दुःखी होकर ब्रह्माजी की अनुमति से एक राजा बनाया, जिससे धर्म की रक्षा हो सके।

"तुम राजा हो। तुमको धर्म-व्यवस्था रखनी है। जो कोई भी उसमें बाधक होगा, उसको समझाना होगा। समझाने से वह न समझे तो उसका नीति से दमन करना होगा; इस पर भी वह न माने तो धन के लोभ से अथवा भेद-नीति से जीतना होगा। अन्त में दण्ड से भी दुष्टों का दमन करना होगा, यही नीति है। इसका नाम शम, दम, भेद, दण्ड नीति है।

"तुमने भी तो यही कुछ किया है। जब तुम्हारे सब शान्तिमय उपाय विफल हो गए, तभी तो तुमने नीति के अन्तिम चरण को उठाया था। इस कारण न तो तुमने कोई अपराध किया है, न ही पाप।"

"पितामह! यदि आप ऐसा मानते हैं तो आपको दुर्योधन के पक्ष में लड़ना नहीं चाहिए था।"

"क्या मेरी भूलों को तुम अपने जीवन का आदर्श बना रहे हो? तब तो तुम भारी भूल करोगे। मैंने जीवन की सबसे महान् भूल की कि मैं धर्म-अधर्म के पहचानने में भटक गया। भटकने का कारण था मेरा दूषित अन्न-जल।

"द्यूत-क्रीड़ा की योजना मुझे ज्ञात थी, परन्तु मेरी बुद्धि में दुर्योधन का पापमय अन्न प्रभाव जमाने लगा था।

"अब द्यूत-सभा में द्रौपदी को नग्न करने का प्रयास हुआ, उस समय भी मैं दूषित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न खाने से विचार-शून्य हो गया था।

"युधिष्ठिर! मैं सत्य कहता हूं कि मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि मैं जीवन की महान् भूल कर बैठा था। आज उसका ही फल भोग रहा हूं। मेरे हृदय में ज्ञान का प्रकाश होने लगा है और अब मैं स्पष्ट रूप में देख रहा हूं कि तुम ही राज्य के अधिकारी थे।"

युधिष्ठिर मान गया। परन्तु उसके मन में सब संशय अभी मिटे नही थे। उसने पूछ लिया, "पितामह! राज्य कैसे करना चाहिए?"

राज्य कार्य है चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म पर दृढ़-निष्ट रखने का प्रबन्ध करना। राज्य के चोर-डाकुओं को दंड के अन्तर्गत रखना और देश के शत्रुओं को सदा त्रसित रखना।

"शत्रु को ऊँचा उठने का अवसर न देना। उनके उन्नति करने से पहले ही उनको निस्तेज कर देना।"

"परन्तु शत्रु के क्या लक्षण हैं?"

"शत्रु और दुर्जन पर्यायवाचक शब्द हैं। जो दुर्जन है, वही शत्रु है। जो श्रेष्ठ गुण रखने वाला व्यक्ति है, वही मित्र है। धर्म के लक्षण शास्त्र ने बताए हैं—जो कर्म अपने प्रतिकूल हों, उसे दूसरों के प्रति भी वैसा समझना। जो कर्म अपने लिए अनिष्ट हो, वह दूसरों के लिए भी अनिष्ठ समझना। जिस व्यवहार की अपने लिए इच्छा करते हो, वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ करो।

"यह धर्म का स्वरूप है। अधर्मी व्यक्ति शत्रु है। उसकी उन्नति मत होने दो।"

युधिष्ठिर कई दिन तक भीष्मजी के पास रहा। मैं श्रीकृष्ण को बधाई देकर वहां से चलने लगा तो उन्होंने पूछ लिया, "किधर जाने का विचार है?"

"मैं समझता हूं कि ईश्वर ने मुझको कथा कहने की शक्ति दी है और मैं चाहता हूं कि अपनी इस ईश्वरदत्त शक्ति से युद्ध में हुए विनाश को भरने का यत्न करूं। एतदर्थ किसी तीर्थ स्थान पर बैठ कर जहाँ देश के कोने-कोने से लोग आते हों, धर्मोपदेश दिया करूँ, जिससे मेरी वाणी का अधिक-से-अधिक उपयोग हो सके।"

"मेरी शुभकामना आपके साथ है। किस तीर्थ स्थान पर जाने का विचार है आपका?"

"अभी तो गंगाद्वार पर जाने का विचार रखता हूं। मैं वहाँ पर रहूँगा। जब तक यह शरीर चलेगा अथवा यह बुद्धि और वाणी अपना कार्य कर सकेंगी, जन-मन में परमात्मा का भय उत्पन्न करने का यत्न करूँगा।"

"ईश्वर आपकी सहायता करे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री तेजपाल सिंह धामा की रचनाएं

हमारी विरासत अर्थात दिव्य भारत का गौरवशाली इतिहास
मनुर्भव अर्थात् विजयी विश्व हिन्दुत्व हमारा
अजेय अग्नि अर्थात महारानी कर्मदेवी की शौर्यगाथा
अग्नि की लपटें अर्थात महारानी पदमिनी की बलीदान गाथा
पृथ्वीराज चौहान एक पराजित विजेता
अखण्ड आर्यवर्त अर्थात **चन्द्रगुप्त चाणक्य** कथा
पंक से पंकज अर्थात **महर्षि वाल्मिकी** कथामृत
नल नील अभियान "श्री राम सेतु निर्माण"
(सचित्र उपन्यास श्री वी सुन्दरम द्वारा नैट पर दिये प्रमाणो पर आधारित कथा)
गौ का गौरव गाय का विश्वकोप

वीर सावरकर साहित्य

हिन्दुत्व के पंच प्राण
हिन्दुत्व
मोपला मोपला विद्रोह कथा
गोमांतक पुर्तगालीयों द्वारा गोमांतक (गोवा) भूमि पर जघन्य अत्याचार की कथा
प्रतिशोध मरहटों द्वारा पानीपत पराजय के प्रतिशोध पर आधारित

अमर सेनानी सावरकर शिवकुमार गोयल
महामना सावरकर हरि वाबू देसाई
लोकोत्तर द्रष्टा सावरकर हरि वाबू देसाई

हिन्दी साहित्य सदन
2 वी डी चैम्बर्स, 10/54 डी वी गुप्ता रोड, करोल वाग पुलीस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-05
E-mail : indiabooks@rediffmail.com Tel : 23553624, 23551344, 09213527666
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री पी .एन .ओक की इतिहास पर खोजपूर्ण रचनाएं

भारत का द्वितीय संग्राम "आज़ाद हिन्द फौज की कहानी, रंगीन चित्रों सहित"
भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें (डीमाई बड़ा साईज़ नये टाईप में)
क्या भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं द्वारा लिखा गया है ?
विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
ताजमहल मन्दिर भवन है
ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है
भारत में मुस्लिम सुल्तान भाग (2 भाग)
आगरा का लाल किला हिन्दू भवन है
फतहपुर सीकरी हिन्दु नगर है
लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं
दिल्ली का लाल किला लाल कोट है
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास (4 भाग)
कौन कहता है अकबर महान था ?
हास्यास्पद अंग्रेज़ी भाषा
क्रिश्चियनिटी कृष्ण नीति है
आरोग्य सौन्दर्य तथा दीर्घायु (व्यायाम व सूर्य नमस्कार)
ज्योतिष स्वयं शिक्षक - फल ज्योतिष

नरेन्द्र पिपलानी

इतिहास की मृत्यु

हिन्दी साहित्य सदन
2 बी डी चैम्बर्स, 10/54 डी बी गुप्ता रोड, करोल बाग पुलीस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-05
E-mail : indiabooks@rediffmail.com Tel : 23553624, 23551344, 09213527666

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त की वेद, श्रीमद्भगवद्गीता, दर्शन शास्त्रों व उपनिषदों पर रचनाएं

श्रीमद्भगवद्गीता (भाष्य)
श्रीमद्भगवद्गीता (अध्ययन)
यजुर्वेद और गृहस्थ धर्म
हमारी सांस्कृतिक धरोहर
वेद प्रवेशिका (सम्पूर्ण)
ईश केन् कठ उपनिषद्
तैत्तिरीय उपनिषद्
प्रश्न ऐत्तरेय उपनिषद्
मुण्डक माण्डूक्य उपनिषद्
वेद मन्त्रों के देवता
वेद और वैदिक काल
वेदों में सोम
वेदों में इन्द्र
विश्वेदेवा
सायंस और वेद
अद्वैत मीमांसा
विज्ञान और विज्ञान
सृष्टि रचना
सांख्य दर्शन
न्याय दर्शन
ब्रह्मसूत्र -1 (वेदान्त दर्शन)
ब्रह्मसूत्र -2 (वेदान्त दर्शन)

081
167963
Central Library
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
167963

हिन्दी साहित्य सदन
2 बी डी चैम्बर्स, 10/54 डी बी गुप्ता रोड, करोल बाग पुलीस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-05
E-mail : indiabooks@rediffmail.com Tel : 23553624, 23551344, 09213527666

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-M आगत संख्या 167963

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

हिन्दी साहित्य सदन
2 बी डी चैम्बर्स, 10/54 डी बी गुप्ता रोड, करोल बाग पुलीस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-05
E-mail : indiabooks@rediffmail.com Tel : 23553624, 23551344, 09213527666

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

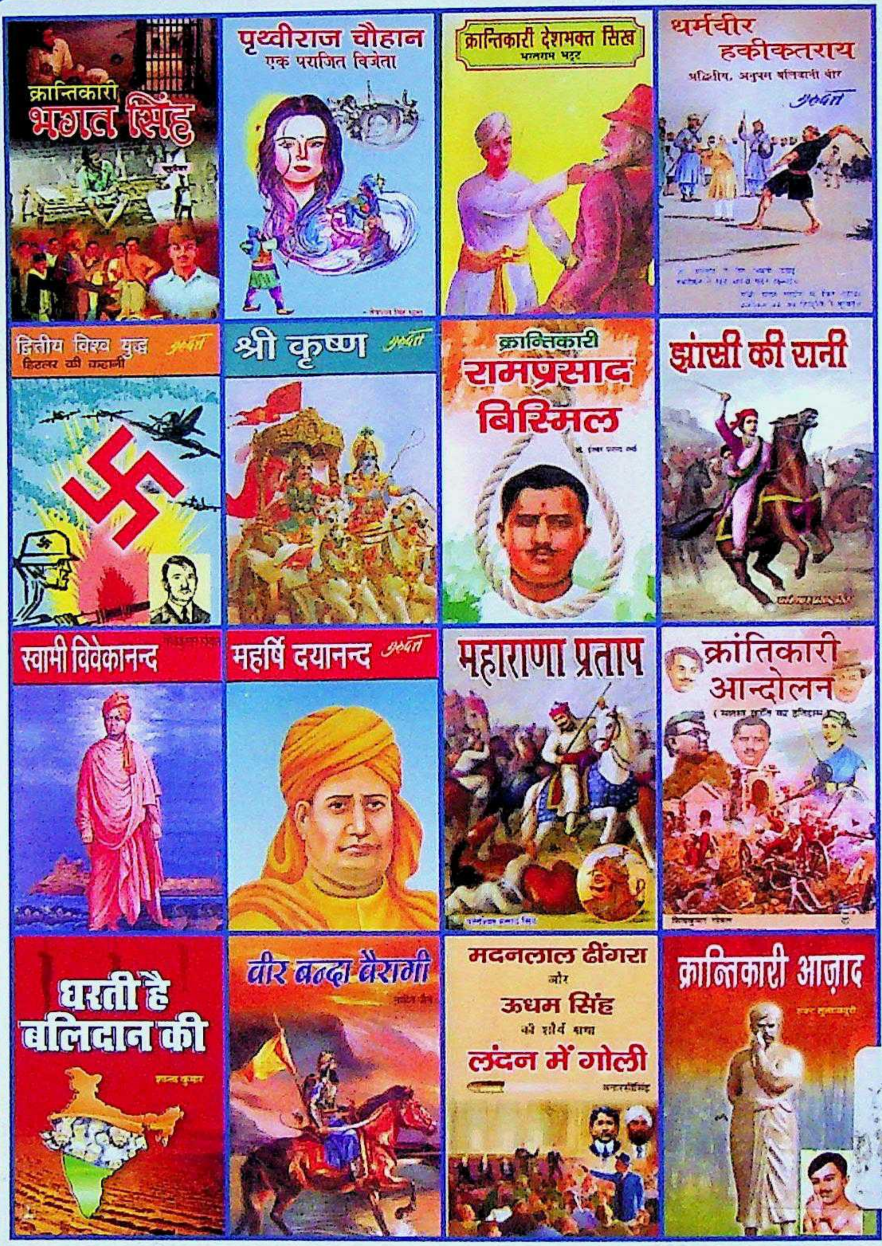

हिन्दी साहित्य सदन
www.hindisahityasadan.com

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005, फोन- 9213527666, 7065618655
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com, hindisahityasadan@gmail.com

9788188388936

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar